# भूमिका

निस्संदेह कर्म की गति बड़ी गहन है । धर्मात्माओं को दुख, पापियो को सुख, आलसियों को सफलता, उद्योगशीलों को असफलता, विवेकवानों पर विपत्ति, मूर्खों के यहाँ सम्पत्ति, दम्भियों को प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठों को तिरष्कार, प्राप्त होने के अनेक उदाहरण इस दुनिया में देखे जाते हैं । कोई जन्म से ही वैभव लेकर पैदा होते हैं, किन्हीं को जीवन भर दुख ही दुख भोगने पड़ते हैं । सुख और सफलता के जो नियम निर्धारित हैं वे सर्वांश पूरे नहीं उतरते ।

इन सब बातो को देखकर भाग्य, ईश्वर की मर्जी, कर्म की गति के सबन्ध में नाना प्रकार के प्रश्न और सन्देहों की झडी लगजाती है । इन सन्देह और प्रश्नों का जो समाधान प्राचीन पुस्तकों में मिलता है उससे आज के तर्क युग में ठीक प्रकार समाधान नहीं होता । फलस्वरूप नई पीढी उन पाश्चात्य सिद्धान्तों की ओर झुकती जाती है जिनके द्वारा ईश्वर और धर्म को ढोग और मनुष्य को पचतत्व निर्मित बताया जाता । एव आत्मा के आस्तित्व से इनकार किया जाता है । कर्म का फल देने की शक्ति राज्यशक्ति के अतिरिक्त और किसी मे नहीं है । ईश्वर और भाग्य कोई वस्तु नहा है आदि नास्तिक विचार हमारी नई पीढ़ी में घर करते जाते हैं ।

इस पुस्तक में वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण से कर्म की गहन गति पर विचार किया गया है और बताया गया है कि जो कुछ भी फल प्राप्त होता है वह अपने कर्म के कारण ही है । हमारा विचार है कि पुस्तक कर्म फल संबंधी जिज्ञासाओं का किसी हद तक समाधान अवश्य करेगी ।

—श्रीराम शर्मा.

# गहना कर्मणो गतिः

## चित्रगुप्त का परिचय

—०—

नयन्ति नरकं नूनं मात्मानो मानवान् हताः।
दिव्यं लोकं च ते तुष्टा इत्यूचुर्मन्त्र वेदिनः॥
—पंचाध्यायी

(नूनं) निश्चय से (हताः) हनन की हुई (आत्मानः) आत्माएँ (मानवान) मनुष्यों को (नरकं) नरक को (नयन्ति) ले जाती हैं (च) और (तुष्टा) संतुष्ट हुई (ते) वे आत्माएँ (दिव्य लोकं) दिव्य लोक को ले जाती हैं (इति) ऐसा (मन्त्र वेदिन.) रहस्य को समझाने वालों ने (ऊचुः) कहा है।

उपरोक्त श्लोक में कहा गया है कि हनन की हुई आत्मा नरक को ले जाती है और संतुष्ट हुई आत्मा दिव्य लोक प्रदान करती है। श्लोक में इस गुत्थी को सुलझा दिया गया है कि स्वर्ग नरक किस प्रकार मिलता है? गरुड़ पुराण में इस सम्बन्ध में एक अलंकारिक विवरण दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि यमलोक में 'चित्र गुप्त' नामक देवता हर एक जीव के भले बुरे कर्मों का विवरण प्रत्येक समय लिखते रहते हैं। जब प्राणी मर कर यमलोक में जाता है तो वह लेखा पेश किया जाता है और इसी के आधार पर शुभ कर्मों

के लिए स्वर्ग और दुष्कर्मो के लिये नरक प्रदान किया जाता है।। साधारण दृष्टि से चित्रगुप्त का अस्तित्व काल्पनिक प्रतीत होता है, क्यों कि पृथ्वी पर अरबों तो मनुष्य ही रहते हैं, फिर ऐसी ही तथाकथित चौरासी लाख योनियाँ जिनमें से अनेक तो मनुष्य जाति से अनेक गुनी अधिक है, इन सब की संख्या गिनी जाय तो इतनी अधिक हो जायगी कि हमारे अङ्क गणित की वहा तक पहुंच भी न होगी। फिर इतने असंख्य प्राणियो द्वारा पल पल पर किये जाने वाले कार्यों का लेखा दिन रात विना विश्राम के कल्प कल्पान्तों तक लिखते रहना एक देवता के लिए कठिन है। इस प्रकार चित्र गुप्त का कार्य असंभव प्रतीत होता है, इस कथानक को एक कल्पना मान लेने पर चित्रगुप्त का अस्तित्व भी संदिग्ध हो जाता है।

आधुनिक शोधो ने उपरोक्त अलंकारिक कथानक में से बडी ही महत्व पूर्ण सचाई को ढूँढ निकाला है, डाक्टर फ्राइड ने मनुष्य की मानसिक रचना का वर्णन करते हुए बताया है कि जो भी भले या बुरे काम ज्ञानवान् प्राणियों द्वारा किये जाते हैं उनका सूक्ष्म चित्रण अन्त चेतना में होता रहता है, ग्रामोफोन के रिकार्डों में रेखा रूप से गाने भर दिये जाते है। संगीत शाला मे नाच, गान हो रहा है और साथ ही अनेक बाजे बज रहे हैं, इन अनेक प्रकार की ध्वनियो का विद्युत शक्ति से एक प्रकार का संक्षिप्त एवं सूक्ष्म एकीकरण होता है और वह रिकार्ड मे जरा सी जगह मे रेखाओं की तरह अंकित होता जाता है। तैयार किया हुआ रिकार्ड रखा रहता है, वह तुरन्त ही अपने आप या चाहे जब नहीं बजने

लगता वरन् सभी उन संगीत ध्वनियों को प्रकट करता है, जब ग्रामोफोन की मशीन पर उसे घुमाया जाता है और सुई की रगड़ उन रेखाओं से होती है। ठीक इसी प्रकार भले और बुरे जो भी काम किये जाते हैं, उनकी सूक्ष्म रेखाएं अन्त चेतना के ऊपर अंकित होती रहती हैं और मन के भीतरी कोने में धीरे धीरे जमा होती जाती हैं। जब रिकार्ड पर सुई का आघात लगता है, तो उनमें भरे हुए गाने प्रकट होते हैं, इसी प्रकार गुप्त मन में जमा हुई रेखाएँ किसी उपयुक्त अवसर का आघात लगने पर ही प्रकट होती हैं। भारतीय विद्वान 'कर्म रेख' के बारे में बहुत प्राचीन काल से जानकारी रखते आ रहे हैं। 'कर्म रेख नहीं मिटे, करो कोई लाखन चतुराई' आदि अनेक उक्तियां हिन्दी और संस्कृत साहित्य में मौजूद हैं, जिनसे प्रकट होता है कि कर्मों की मोटी रेखाएं होती हैं, जो अपना फल दिये बिना मिटती नहीं। भाग्य के बारे में मोटे तौर से ऐसा समझा जाता है कि सिर की अगली मस्तक वाली हड्डी पर कुछ रेखाएं ब्रह्मा लिख देता है और 'विधि का लिखा को मेटन हारा।' उसे मिटाने वाला कोई नहीं है। डाक्टर वीजेन्ट ने मस्तिष्क में भरे हुए ग्रे मैटर ( भूरा चर्बी जैसा पदार्थ ) की सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता से खोज करने पर उस के एक एक परमाणु में असाधारण रेखाएं पाई हैं, यह रेखाएँ किस प्रकार बनती हैं इसका कोई शारीरिक प्रत्यक्ष कारण उन्हें नहीं मिला, तब उन्होंने अनेक व्यक्तियों के परमाणुओं का मुकाबिला करके यह निष्कर्ष निकाला कि मानसिक, आत्मिक एवं विचार-जन्य शक्तियों से यह रेखाएँ बनती और बदलती हैं, किन्तु सर्वश्रेष्ठ मत विचारकों ने

इनकी संख्या बहुत बडी होती है। अतएव यह रेखाएँ शारीरिक और मानसिक कार्यों को सक्षिप्त और सूक्ष्म रूप से लिपिवद्ध करने वाली प्रमाणित हुई ।

भले बुरे कार्यों का ग्रे मैटर के परमाणुओं पर यह रेखांकन ( जिसे प्रकट के शब्दों मे अन्त चेतना का सस्कार कहा जा सकता है ) पौराणिक चित्र गुप्त की वास्तविकता को सिद्ध कर देता है । चित्र गुप्त शब्द के अर्थों से भी इसी प्रकार की ध्वनि निकलती है । गुप्त चित्र, गुप्त मन, अन्त चेतना, सूक्ष्म मन, पिछला दिमाग, भीतरी चित्त, इन शब्दों के भावार्थ को ही चित्र गुप्त शब्द प्रगट करता हुआ दीखता है 'चित्त' शब्द को जल्दी में लिख देने से 'चित्र' जैसा ही बन जाता है। सभव है कि चित्त का विगड़ कर चित्र बन गया हो या प्राचीन काल मे चित्र और चित्त एक ही अर्थ के बोधक रहे हो। कर्मों की रेखाएँ एक प्रकार के गुप्त चित्र ही हैं, इसलिए उन छोटे अकनो में गुप्त रूप से—सूक्ष्म रूप से—बडे बडे घटना चित्र छिपे हुए होते हैं, इस क्रिया प्रणाली को चित्र गुप्त मान लेने से प्राचीन शोध का समन्वय हो जाता है।

यह चित्र गुप्त निस्सदेह हर प्राणी के हर एक कार्य को हर समय बिना विश्राम किये, अपनी वही में लिखता रहता है। सब का अलग-अलग चित्र गुप्त है, जितने प्राणी है, उतने ही चित्र गुप्त हैं, इसलिये यह सन्देह नहीं रह जाता कि इतना लेखन कार्य किस प्रकार पूरा हो पाता होगा। स्थूल शरीर के कार्यों की सुव्यवस्थित जानकारी सूक्ष्म चेतना मे अकित होती रहे तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

'पौराणिक चित्र गुप्त एक है और यहां अनेक हुए' यह शंका भी कुछ गहरी नहीं है, दिव्य शक्तियां व्यापक होती हैं. पाठक जानते हैं कि प्राण तत्व एक है, उसके अंश विभिन्न व्यक्तियों मे दृष्टिगोचर होते हैं। आत्मा और परमात्मा मे व्यष्टि और समष्टि का ही भेद है, बाकी दोनो पदार्थ एक ही हैं। घटाकाश मठाकाश का ऐसा ही भेद है। इन्द्र, वरुण, अग्नि, शिव, यम आदि देवता बोधक सूक्ष्मतत्व व्यापक समझे जाते हैं। जैसे बगीचे की वायु, गन्दे नाले की वायु, आदि स्थान भेद से अनेक नाम वाली होते हुए भी मूलतः विश्व व्यापक वायुतत्व एक ही है, वैसे ही अलग अलग शरीरों में रहकर अलग-अलग काम करने वाला चित्र गुप्त देवता भी एक ही तत्व है।

यह हर व्यक्ति के कार्यो का लेखा किस आधार पर, कैसा, किस प्रकार, कितना, क्यों लिखता है यह अगली पंक्तियों में बताया जायगा. एवं चित्र गुप्त द्वारा लिखी हुई कर्म रेखाओं के आधार पर स्वर्ग नरक का विवरण और उनके प्राप्त होने की व्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा।

पिछली पंक्तियों में पाठक पढ़ चुके हैं कि हमारा गुप्त चित्र-अन्तर्मन ही निरन्तर चित्रगुप्त देवता का काम करता रहता है। जो कुछ भले या बुरे काम हम करते हैं उनका सूक्ष्म चित्र उतार उतार कर अपने भीतर जमा करता रहता है। सिनेमा के पर्दे पर मनुष्य की बराबर लम्बी चौड़ी तस्वीर दिखाई देती है पर उसका फिल्म केवल एक इंच ही चौड़ा होता है। इसी प्रकार पाप पुण्य का घटना क्रम तो विस्तृत होता है पर उसका सूक्ष्म चित्र एक पतली रेखा मात्र के भीतर

खिंच जाता है और वह रेखा गुप्त मन के किसी परमाणु पर अदृश्य रूप से जमकर बैठ जाती है। शार्ट हैंड लिखने वाले बडी बात को थोडी सी उलटी सीधी लकीरों से इशारे से जरा से कागज पर लिख देते हैं। कर्म रेखा को ऐसा ही दैवी शार्ट हेण्ड समझा जा सकता है।

पाठकों को इतनी जानकारी तो बहुत पहले हो चुकी होगी कि मन के दो भाग हैं एक वहिर्मन दूसरा अन्तर्मन बाहरी मन तो तर्क वितर्क करता है, सोचता है, काट छाट करता है, निर्णय करता है और अपने इरादों को बदलता रहता है पर अन्तर्मन भोले भाले किन्तु दृढ निश्चयी बालक के समान हैं वह काट छाट नहीं करता वरन् श्रद्धा और विश्वास के आधार पर काम करता है। बाहरी मन तो यह सोच सकता है कि पाप कर्मों की रेखाये अपने ऊपर अंकित न होने दू और पुण्य कर्मों को बढा चढा कर अंकित करूं, जिससे पाप का फल न भोगना पडे और पुण्य फल का भरपूर आनन्द प्राप्त हो। परन्तु भीतरी मन ऐसा नहीं है वह सत्यनिष्ठ जज की तरह फैसला करता है, कोई लोभ, लालच, भय, स्वार्थ उसे प्रभावित नहीं करता। कहा जाता है कि मनुष्य के अन्दर एक ईश्वरीय शक्ति रहती है, दूसरी शैतानी। आप गुप्त मन को ईश्वरीय शक्ति और तर्क, मन, छल, कपट, स्वार्थ, लोभ मे रत रहने वाले बाह्य मन को शैतानी शक्ति कह सकते हैं। बाहरी मन धोखेबाजी कर सकता है, परन्तु भीतरी मन तो सत्य रूपी आत्मा का तेज है। वह न तो मायावी आचरण करता है न छल कपट। निष्पक्ष रहना उसका स्वभाव है। इसीलिए ईश्वर ने उसे इतना महत्वपूर्ण

कार्य सौंपा है। दुनियां उसे चित्रगुप्त देवता कहती है। यदि वह भी पक्षपात करता तो भला इतनी ऊँची जज की पदवी कैसे पा सकता था ? हमारा गुप्त मन खुफिया जासूस की तरह हर घड़ी साथ साथ रहता है और जो जो भले बुरे काम किए जाते हैं उनका ऐमालनामा अपनी खुफिया डायरी में दर्ज करता रहता है।

बाहरी दुनियाँ में मुलाजिम को सजा दिलाने का काम दो महकमों के आधीन है एक पुलिस, दूसरा अदालत। पुलिस तो मुलाजिम को पकड़ ले जाती है और उसके कामों का सबूत एकत्रित करके अदालत के सामने पेश करती है। फिर अदालत का महकमा अपना काम करता है, जज महाशय अपराध और अपराधी की स्थिति के बारे में बहुत दृष्टियों से विचार करते हैं तब जैसा उचित होता है वैसा फैसला करते हैं। एक ही जुर्म में आये हुए अपराधियों को अलग अलग तरह की सजा देते हैं। तीन खूनी पकड़ कर आये, इनमें से एक को बिलकुल बरी कर दिया, दूसरे को पाँच साल की सजा मिली, तीसरे को फांसी। हत्या तीनों ने की थी, पर सजा देते वक्त मजिस्ट्रेट ने बहुत बातों पर विचार किया। जिसे बरी कर दिया गया था वह मकान बनाने वाला मजदूर था छत पर काम करते वक्त पत्थर का टुकड़ा उसके हाथ से अचानक छूट गया और वह नीचे सड़क पर चलते हुए मुसाफिर के सिर में लगा, सिर फट गया, मुसाफिर की मृत्यु हो गई। जजने देखा हत्या तो अवश्य हुई, मजदूर निर्दोष है उसने जान बूझ कर बुरे इरादे से पत्थर नहीं फेंका था, इसलिए उसे बरी कर दिया गया । दूसरा मुलजिम एक किसान था खेत काटते हुए चोर से ऐसी लाठी मारी कि वह

मर गया। मजिस्ट्रेट ने सोचा चोरी होते देखकर गुस्सा आना स्वाभाविक है पर किसान की इतनी गलती है कि मामूली अपराध पर इतना नहीं मारना चाहिए था इसलिए उसे पांच साल की सजा मिली। तीसरा मुलजिम एक मशहूर डाकू था। एक धनी पुरुष के घर में रात को घुस गया और उसका कत्ल करके धन माल चुरा लाया इसका अपराध जघन्य था इसलिये फासी की सजा दी गई। तीनो ही अपराधियों ने खून किया था, जुर्म का बाहरी रूप एकसा था, पर मजिस्ट्रेट सूक्ष्मदर्शी होता है, वह बाहरी काम को देखकर ही सजा नहीं दे डालता वरन भीतरी बारीकियों पर भली प्रकार विचार करके तब कुछ फैसला करता है।

भीतरी दुनिया मे गुप्त-चित्र, या चित्रगुप्त पुलिस और अदालत दोनो महकमों का काम स्वय ही करता है। यदि पुलिस झूंठा सबूत दे दे तो अदालत का फैसला भी अनुचित हो सकता है। परन्तु भीतरी दुनियां में ऐसी गडबड़ी की सभावना नहीं। अन्त करण सब कुछ जानता है कि यह कर्म किस विचार से, किस इच्छा से, किस परिस्थिति में, क्यों कर किया गया था। वहा बाहरी मन को बयान या सफाई देने की जरूरत नहीं पडती क्योंकि गुप्त मन उस बात के सम्बन्ध में स्वयं ही पूरी पूरी जानकारी रखता है। हम जिस इच्छा से, जिस भावना से जो काम करते हैं उस इच्छा या भावना मे ही पाप पुण्य का नाप होता है। भौतिक वस्तुओ की तोल नाप बाहरी दुनिया मे होती है। एक गरीब आदमी दो पैसा दान करता है और एक धनी आदमी दस हजार रुपया दान करता है, बाहरी दुनिया तो पुण्य की तौल रुपये

पैसों की गिनती के अनुसार करेगी। दो पैसा दान करने वाले की ओर कोई आंख उठाकर भी न देखेगा पर दस हजार रुपया देने वाले की प्रशंसा चारों ओर फैल जावेगी। भीतरी दुनियां में यह तोल नाप नहीं चलती। अनाज के दाने अंगोछे में बाँधकर गांव में बनिये की दूकान पर चले जांय तो वह बदले में गुड़ दे देगा। पर उसी अनाज को इङ्गलैंड की राजधानी लन्दन में जाकर किसी दूकानदार को दिया जाय तो वह कहेगा, महाशय! इस शहर में अनाज के बदले सौदा नहीं मिलता यहाँ तो पौंड शिलिंग पैन्स का सिक्का चलता है। ठीक इसी तरह बाहरी दुनियाँ में रुपयों की गिनती से, काम के बाहरी फैलाव से, कथा वार्ता से, तीर्थ यात्रा आदि भौतिक चीजों से यश खरीदा जाता है, पर चित्रगुप्त देवता के देश में यह सिक्का नहीं चलता, वहां तो इच्छा और भावना की नाप तोल है। उसी के मुताबिक पाप पुण्य का जमा खर्च किया जाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उकसा कर लाखों आदमियों को महाभारत के युद्ध में मरवा डाला। लाशों से भूमि पट गई, खून की नदियां बह गई, फिर भी अर्जुन को कुछ पाप न लगा, क्योंकि हाड मांस के बने हुए कितने खिलौने टूट फूट गये इसका लेखा चित्रगुप्त के दरबार में नहीं रक्खा गया। भला कोई राजा यह हिसाब रखता है कि मेरे भण्डार में से कितने चांवल फैल गये पांच तत्वों से बनी हुई नाशवान चीजों को कोई पूछ आत्मा के दरबार में नहीं है। अर्जुन का उद्देश्य पवित्र था, वह पाप को नष्ट करके धर्म की स्थापना करना चाहता था। बस वही इच्छा खुफिया रजिस्टर में दर्ज हो गई आदमियों के मरने जीने की संख्या का कोई हिसाब नहीं लिखा गया। दुनियां में करोड़पति की बड़ी

अत्यन्त दया, सहानुभूति, उदारता एवं प्रेमपूर्वक करता है, तो बाहर से देखने में दोनों के काम एक समान भले ही हों, पर उस पुण्य का परिणाम भावना की उदासीनता एवं प्रेम तत्परता के अनुसार न्यूनाधिक होगा। इसी प्रकार एक भूखा व्यक्ति लाचार होकर चोरी करता है, दूसरा व्यक्ति मद्यपान के लिये चोरी करता है तो दोनों के पाप में निस्सन्देह न्यूनाधिकता होगी। चोरी दोनों ने की है पर दुष्टता में न्यूनाधिकता के कारण पाप भी उसी अनुपात से होगा।

इस सम्बन्ध में एक और भी महत्वपूर्ण बात जान लेने की है कि हर व्यक्ति के लिये अलग २ कानून व्यवस्था है। रिश्वत के मामले में एक चपरासी, एक क्लर्क, एक मजिस्ट्रेट तीन आदमी पकड़े जांय, तो तीनों को अलग अलग तरह की सजा मिलेगी। संभव है चपरासी को डांट-डपट सुनाकर ही छुटकारा मिल जाय पर मजिस्ट्रेट बर्खास्त हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी बड़ी जिम्मेदारी है। एक असभ्य भील, शिकार मार कर पेट पालता है, अपराध उसका भी है, परन्तु अहिंसा का उपदेश करने वाला पंडित यदि चुपचाप कूकर की दुकान में जाता है, तो पंडित को उस भील की अपेक्षा अनेक गुना पाप लगेगा। कारण यह है कि ज्ञान वृद्धि करता हुआ जीव जैसे जैसे आगे बढ़ता चलता है वैसे ही वैसे उसकी अन्त- चेतना अधिक स्वच्छ होती जाती है। मैले कपड़े पर थोड़ी सी धूलि पड़ जाय तो उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु दूध के समान स्वच्छ धुले हुए कपड़े पर जरा सा धब्बा लग जाय, तो वह दूर से ही चमकता है और बहुत बुरा मालूम पड़ता है। छोटा बच्चा कपड़े पर टट्टी फिर देता है, पर उसे कोई बुरा नहीं कहता और न

बच्चे को कुछ शर्म आती है, किन्तु यदि कोई जवान आदमी ऐसा कर डाले तो उसे बुरा कहा जायगा और वह खुद भी लज्जित होगा। बच्चे ने और बड़े ने आचरण एक सा ही किया, पर उनके मानसिक विकास में अन्तर होने के कारण बुराई की गिनती कम ज्यादा की गई। इसी प्रकार अशिक्षित, अज्ञानी, असभ्य व्यक्तियों को कम पाप लगता है। ज्ञान वृद्धि के साथ साथ भला बुरा समझने की योग्यता बढ़ती जाती है, सत् असत् का कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक प्रबल होता जाता है, अन्त करण की पुकार जोरदार बनती जाती है, इस प्रकार आत्मोन्नति के साथ साथ सदाचरण का जिम्मेदारी भी बढती जाती है। हुकमअदूली करने पर मामूली चपरासी को दो रुपया जुर्माना हो जाता है, परन्तु फौजी अफसर हुक्म अदूली करे तो कोर्ट मार्शल द्वारा गोली से शूट करा दिया जायगा। ज्ञानवान्, विचारवान और भावना शील हृदय वाले व्यक्ति जब दुष्कर्म करते हैं तो उनका चित्रगुप्त उस करतूत को बहुत भारी पाप की श्रेणी में दर्ज कर दिया है। गौदान से लोग वैतरणी पार कर जाते हैं, पर राजा नृप जैसा विवेकवान थोड़ी गलती करने पर ही नरक मे पहुचा। अज्ञानी व्यक्ति अपराध करे तो वह उतना महत्व नहीं रखता। किन्तु कर्तव्य च्युत ब्राह्मण तो घोर दड का भागी बनता है। राजा बनना सब दृष्टियों मे अच्छा है, पर राजा की जिम्मेदारी भी सब से ऊँची है। ज्ञानवानो का यह कठोर उत्तरदायित्व है कि सदाचार पर दृढ रहे, अन्यथा सात मजिल ऊँची छत पर से गिरने वाले को जो कष्ट होता है, उन्हे भी वही दुख होगा।

कर्मों का फल किस प्रकार मिलता है? अगली पंक्तियों मे पाठकों को यह रहस्य भी समझाया जायगा।

# आकस्मिक सुख-दुख

दैविकं दैहिकं चापि भौतिकं च तथैव हि ।
आयाति स्वयमाहूतो दुःखानामेष संचयः ॥

—पंचाध्यायी

( दैविकं ) दैविक ( अपिच ) और ( दैहिकं ) दैहिक ( तथैव हि ) उसी प्रकार ( च ) और ( भौतिकं ) भौतिक ( दुःखानां ) दुखों का ( एष ) यह ( संचयः ) समूह ( स्वयमाहूतः ) अपने आप बुलाया हुआ ( आयति ) आता है।

अनेक बार ऐसे अवसर आ उपस्थित होते हैं जो प्राकृतिक नियमों के बिलकुल विपरीत दिखाई देते हैं। एक मनुष्य उत्तम जीवन बिताता है पर अकस्मात उसके ऊपर ऐसी विपत्ति आ जाती है मानो ईश्वर किसी घोर दुष्कर्म का दण्ड दे रहा हो। एक मनुष्य बुरे से बुरे कर्म करता है पर वह चैन की बंसी बजाता है सब प्रकार के सुख सौभाग्य उसे प्राप्त होते हैं। एक निठल्ले को लाटरी से जुआ से या कहीं गढ़ा हुआ धन मिल जाता है किन्तु दूसरा अत्यन्त परिश्रमी और बुद्धिमान मनुष्य अभाव में ही ग्रसित रहता है। एक व्यक्ति स्वल्प परिश्रम से ही बड़ी भारी सफलता प्राप्त कर लेता है दूसरा घोर प्रयत्न करने और अत्यन्त सही तरीका पकड़ने पर भी असफल रहता है ऐसे अवसरों पर 'प्रारब्ध' 'भाग्य' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार महामारी, बीमारी, अकाल, मृत्यु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बिजली गिरना, भूकम्प, बाढ़ आदि के दैवी प्रकोप भी भाग्य प्रारब्ध कहे जाते हैं।

आकस्मिक दुर्घटनायें, मानसिक आपदा, वियोग, आदि वे प्रसग जो टल नही सकते इसी श्रेणी में आ जाते हैं।

यह ठीक है कि ऐसे प्रसङ्ग कम आते हैं प्रयत्न से उलटा फल होने को–आकस्मिक घटना घटित हो जाने के–अपवाद चाहे कितने ही कम क्यों न हों, पर होते जरूर हैं । और वे कभी कभी ऐसे कठोर होते हैं कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरों पर हममे से साधारण श्रेणी का ज्ञान रखने वाले वहुत ही भ्रमित होजाते हैं और ऐसी-ऐसी धारणा वना लेते हैं जो जीवन के लिए वहुत ही घातक होती हैं। कुछ लोग तो ईश्वर पर अत्यन्त कुपित होते हैं, उसे दोषी ठहराते हैं और भरपूर गालियाँ देते हैं, कई तो नास्तिक हो जाते हैं कहते हैं कि हमने ईश्वर का इतना भजन पूजन किया पर उसने हमारी कुछ भी महायता नहीं की ऐसे ईश्वर को पूजना व्यर्थ है, कई महानुभाव लाभ की इच्छा से साधु सत, देवी–देवताओ की पूजा करते हैं यदि सयोग वश इसी बीच मे कुछ हानि कर प्रसग आ गये तो उस पूजा के स्थान पर निन्दा करने लगते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि ऐसे आकस्मिक प्रसग आने के समय ही यदि घर में कोई नया प्राणी आया हो, कोई पशु खरीदा हो, वालक उत्पन्न हुआ हो, नई वहू आई हो, तो उस घटना का दोप या श्रेय उस नवागन्तुक प्राणी पर थोप दिया जाता है यह नया वालक वड़ा भाग्यवान हुआ जो जन्मते ही इतना लाभ हुआ, यह वहू वडी अभागी आई कि आते ही सत्यानाश कर दिया इस श्रेयदान या दोपारोपण के कारण कभी २ घर मे ऐसा दुखदाई क्लेश कलह उठ खडे होते हैं कि उनका स्मरण होते ही रोमाच हो जाते हैं । हमारे परिचित एक सज्जन के घर में नई वहू आई उन्हीं दिनों घर का

एक जवान लड़का मर गया । इस मृत्यु का दोष बेचारी नई बहू पर पड़ा, सारा घर यही तानेजनी करता यह 'बहू बड़ी अभागी आई है आते ही एक बलि ले ली ।' कुछ दिन तो इन अपमानों को बेचारी निर्दोष लड़की विष के घूंट की तरह पीती रही पर जब हर वक्त का अपमान, घर वालों का नित्य-प्रति का दुर्व्यवहार, सहन न कर सकी तो मिट्टी का तेल छिड़क कर जल मरी । बेचारी निरपराध विधवाओं को अभागी, कल-मुंही, डायन, की उपाधि मिलने का एक आम रिवाज है । इसका कारण भाग्यवाद के सम्बन्ध में मन में जमी हुई अनर्थ मूलक धारणा है । सही बात को न समझने के कारण लोगों के हृदयों में ऐसे ऊट पटांग विश्वास घर जमा लेते हैं, अनेक व्यक्ति तो भाग्य की वेदी पर कर्तव्य को भी बलि चढ़ा देते हैं उनका विश्वास होता है कि इस जीवन में जो भी हानि लाभ होगी वह भाग्य के अनुसार होगी । अब जो कर्म किये जा रहे हैं उनका फल अगले जन्म में भले मिले पर यह जीवन तो प्रारब्ध के कर्मों से ही जकड़ा हुआ है । जब उपाय करने, प्रयत्न या उद्योग करने की बात चलती है तो वे यही कहते हैं जो भाग्य में लिखा होगा सो होगा, ब्रह्मा की लकीर को कौन मेट सकता है. जो ईश्वर को करनी होगी वह होकर रहेगी, होनी बड़ी प्रबल है. इन शब्दों का प्रयोग वास्तव में इस लिये है कि जब आकस्मिक दुर्घटना पर अपना वश नहीं चलता और अनहोने प्रसंग सामने आ खड़े होते हैं तो मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा विक्षुब्ध, किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है । सामने कोई दोषी तो दिखाई नहीं पड़ता पर आघात लगने के कारण रोष आता ही है । आवेश में बुद्धि ठिकाने नहीं रहती संभव है कि वह रोष किसी निर्दोष पर बरस पड़े और अनर्थ उप-

स्थित करदे इसलिए उस क्षोभ को शान्त करके किसी प्रकार सन्तोष धारण किया जा सके। परन्तु हम देखते हैं कि आज अनेक व्यक्ति उस आपत्ति काल के मन समझाव को कर्तव्य के ऊपर कुल्हाड़ी की तरह चलाते हैं। होते होते यह लोग उद्योग के विरोधी होजाते हैं और अजगर और पक्षी की उपमा देकर भाग्य के ऊपर निर्भर रहते हैं, यदि यह सज्जन बडे बूढे हुए तो अपने प्रभाव से निकटवर्ती अल्पज्ञान वाले तरुणों और किशोरों को भी इसी भाग्यवाद की निराशा के दलदल में डाल देते हैं।

पाठक समझे होंगे कि आकस्मिक घटनाओ के वास्तविक कारण की जानकारी न होने से कैसी कैसी अनर्थ कारक उट-पटाँग धारणायें उपजती हैं और वे लोगों के मनो में जब गहरी घुस बैठती हैं तो जीवन प्रवाह को उलटा, विकृत एवं बेहूदा बना देती हैं। मनुष्य जाति 'कर्म की गहन गति' को चिरकाल से जानती है और उसके उन कारणों को जानने के लिए चिरकाल से प्रयत्न करती रही है। उसके कई हल भी अब तक तत्वदर्शियों के ढूँढ निकाले हैं। पचाध्यायीकार ने उपरोक्त श्लोक मे 'गहना कर्मणोगति' पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि यह दैविक, दैहिक और भौतिक घटनायें, तीन प्रकार के आकस्मिक सुख दुख, सचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों के आधार पर होते हैं। दूध एक नियत समय में एक विशेप प्रक्रिया द्वारा घी बन जाता है इसी प्रकार त्रिविध कर्म भी तीन प्रकार के फलो को उत्पन्न करते हैं। वे आकस्मिक घटनायें किस तरह उत्पन्न करते हैं इसका पूरा, विस्तृत, एव वैज्ञानिक विवेचन अगले पृष्ठों पर करेंगे।

---

# तीन दुख और उनका कारण।

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि आकस्मिक सुख दुख हर व्यक्ति के जीवन मे आया करते हैं। इनमे सुर मुनि, देव, दानव कोई नहीं बचता। भगवान राम तक इस कर्म गति से छूट न सके। सूरदास ने ठीक कहा है—

कर्मगति टारी नाहि टरै।
गुरु वशिष्ठ पण्डित बड ज्ञानी,
रचि पचि लगन धरै।
पिता मरण और हरण सिया को,
बन मे विपति परै॥

वशिष्ठ जैसे गुरु के होते हुए भी राम कर्म गति को टाल न सके। उन्हें भी पिता का मरण, सिया का हरण एवं वन की विपत्तियां सहन करनी पड़ी। यह विपत्तियाँ कहीं से अकस्मात टूट पड़ती हैं, या ईश्वर नाराज होकर दुख दंड देता है, ऐसा समझना ठीक न होगा। 'पञ्चाध्यायी' का निश्चित मत है कि सब प्रकार के दुख अपने ही बुलाने से आते हैं। रामायण का मत भी इस सम्बन्ध मे यही है—

काहु न कोउ दुख सुखकर दाता।
निज-निज कर्म भोग सब भ्राता॥

दूसरा कोई भी प्राणी या पदार्थ किसीको दुख देने की शक्ति नहीं रखता। सब लोग अपने ही कर्मों का फल भोगते

हैं और उसी भोग से रोते चिल्लाते रहते हैं। जीव की पंछ से ऐसी कठोर व्यवस्था बँधी हुई है जो कर्मों का फल तैयार करती रहती है। मछली पानी में तैरती है उसकी पूँछ पानी को काटती हुई पीछे-पीछे एक रेखा सी बनाती चलती है। साप रेंगता जाता है और रेत पर उसकी लकीर बनती जाती है, जो काम हम करते हैं उनके सस्कार बनते जाते हैं। बुरे कर्मों के सस्कार, स्वयं बोई हुई कटीली झाडी की तरह अपने लिए ही दुखदायी बन जाते हैं।

अब हम तीन प्रकार के कर्म, उनके तीन प्रकार के प्रभा एव तीन तरह के फलों की चर्चा आरम्भ करते हैं। सुख मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति है। सुकर्म करना स्वभाव इसलिए सुख प्राप्त होना भी स्वाभाविक ही है। कष्ट दुख होता है। दुख से ही लोग डरते घबराते हैं उसी से छुटका पाना चाहते हैं। इसलिए दुखों का ही विवेचन यहा हो उचित है। आरोग्य वर्द्धक शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र अलग अलग शास्त्र हैं। इसी प्रकार सुख दुख के भी दो अल विज्ञान हैं। सुख वृद्धि के लिए धर्माचरण करना चाहिए जैसे स्वास्थ्य वृद्धि के लिए पौष्टिक पदार्थों का सेवन किया जाता। दुख निवृत्ति के लिए, रोग का निवारण करने के लिये उस निदान और चिकित्सा जानने की आवश्यकता है। कर्म गहन गति की जानकारी प्राप्ति करने से दुखो का मर्म समझ आ जाता है। दुखों के कारण को छोड देने से सहज ही दु की निवृत्ति हो जाती है। आइए, अब हम दुखों का स्व आपके सामने रखने का प्रयत्न करें।

दुख तीन प्रकार के होते हैं (१) दैविक (२) दै

जैसे चिन्ता, आशंका क्रोध, अपमान, शत्रुता, विछोह, भय, शोक आदि। दैहिक दुख वे होते हैं जो शरीर को होते हैं जैसे रोग, चोट, आघात, विष आदि के प्रभाव से होने वाले कष्ट। भौतिक दुःख वे हैं जो अचानक अदृश्य प्रकार से आते हैं जैसे भूकम्प, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी, युद्ध आदि। इन्हीं तीन प्रकार के दुखों की वेदना से मनुष्यों को तड़पता हुआ देखा जाता है। यह तीनों दुख हमारे शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कर्मों के फल हैं। मानसिक पापों के परिणाम से दैविक दुख आते हैं, शारीरिक पापों के फलस्वरूप दैहिक और सामाजिक पापों के कारण भौतिक दुख उत्पन्न होते हैं।

दैविक दुख—मानसिक कष्ट, उत्पन्न होने का कारण वे मानसिक पाप हैं जो स्वेच्छा पूर्वक तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर किये जाते हैं जैसे ईर्षा, कृतघ्नता, छल, दम्भ, घमण्ड, क्रूरता, स्वार्थपरता आदि इन कुविचारों के कारण जो वातावरण मस्तिष्क में घुटता रहता है उससे अन्तःचेतना पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है जिस प्रकार धुएँ के कारण दीवाल काली पड़ जाती है या तेल से भीगने पर कपड़ा गन्दा हो जाता है। आत्मा स्वभावतः पवित्र है वह अपने ऊपर इन पाप मूलक कुविचारों प्रभावों को जमा हुआ नहीं रहने देना चाहती, वह इस फिक्र में रहती है कि किस प्रकार इस गन्दगी को साफ करूं? पेट में हानिकारक वस्तुएं जमा होजाने पर पेट उन्हें कै या दस्त के रूप में निकाल बाहर करता है। इसी प्रकार तीव्र इच्छा से, जानबूझ कर किये गए पापों को निकाल बाहर करने के लिए आत्मा आतुर हो उठती है। हम उन्हें जरा भी जान नहीं पाते किन्तु आत्मा भीतर ही भीतर उस पाप भार को हटाने के लिए [illegible]

व्याकुल होजाती है। बाहरी मन-स्थूल बुद्धि को उस अदृश्य प्रक्रया का कुछ भी पता नहीं लगता, पर अन्तर्मन चुपके ही चुपके ऐसे अवसर एकत्रित करने में लगा रहता है जिससे वह भार हट जाय। अपमान, असफलता, विछोह, शोक, दुख आदि प्राप्त हो, ऐसे अवसरों को वह कहीं से एक न एक दिन, किसो प्रकार खींच ही लाता है ताकि उन दुर्भावनाओं का, पाप सस्कारों का—इन अप्रिय परिस्थितियों में समाधान हो जाय।

शरीर द्वारा किये हुए चोरी, डकैती, व्यभिचार, अपहरण हिंसा आदि में मन ही प्रमुख है, हत्या करने में हाथ का कोई स्वार्थ नहीं है, वरन् मन के आवेश की पूर्ति है, इसलिए इस प्रकार के कार्य जिनके करते समय इन्द्रियों को सुख न पहुचता हो, मानसिक पाप कहलाते हैं, ऐसे पापों का फल मानसिक दुख होता है। स्त्री-पुत्र आदि प्रिय जनो की मृत्यु, धन नाश, लोक निन्दा, अपमान, पराजय, असफलता, दरिद्रता आदि मानसिक दुख हैं, उनसे मनुष्य की मानसिक वेदना उखड पडती है, शोक सन्ताप उत्पन्न होता है, दुखी होकर रोता चिल्लाता है, आँसू बहाता है, शिर धुनता है। इससे वैराग्य के भाव उत्पन्न होते हैं और भविष्य में अधर्म न करने एव धर्म में प्रवृत्त रहने की प्रवृत्ति वढ़ती है। देखा गया है कि मरघट में स्वजनों की चिता रचते हुए ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं कि जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। धन नाश होने पर मनुष्य भगवान को पुकारता है। पराजित और असफल व्यक्ति का घमण्ड चूर हो जाता है। नशा उतर जाने पर वह होश की बात करता है, मानसिक दुखों का एक मात्र उद्देश्य मन मे जमे हुए ईर्षा कृतघ्नता, स्वार्थपरता, क्रूरता,

निर्दयता, छल, दम्भ, घमण्ड की सफाई करना होता है। दुख इसीलिए आते हैं कि आत्मा के ऊपर जमा हुआ प्रारब्ध कर्मों का पाप संस्कार निकल जाय। पीड़ा और वेदना की धारा उन पूर्व कृत प्रारब्ध कर्मों के निकृष्ट संस्कारों को धोने के लिए प्रकट होती है।

दैविक—मानसिक कष्टों का कारण समझ लेने के उपरान्त अब दैहिक-शारीरिक-कष्टों का कारण समझना चाहिये। जन्मजात अपूर्णता एवं पैतृक रोगों का कारण पूर्व जन्म में उन अङ्गों का दुरुपयोग करना है। मरने के बाद सूक्ष्म शरीर रह जाता है। नवीन शरीर की रचना इस सूक्ष्म शरीर द्वारा होती है। इस जन्म में जिस अङ्ग का दुरुपयोग किया जा रहा है, वह अङ्ग सूक्ष्म शरीर में अत्यन्त निर्बल हो जाता है, जैसे कोई व्यक्ति अति मैथुन करता हो तो सूक्ष्म शरीर का वह अङ्ग निर्बल होने लगेगा, फल स्वरूप संभव है कि वह अगले जन्म में नपुंसक हो जाय। यह नपुंसकता केवल कठोर दंड नहीं है, वरन सुधार का एक उत्तम तरीका भी है। कुछ समय तक उस अङ्ग को विश्राम मिलने से आगे के लिए वह फिर सचेत और सशक्त हो जायगा। शरीर के अन्य अङ्गों का शारीरिक लाभ के लिए पाप पूर्ण, अमर्यादित, अपव्यय करने पर आगे के जन्म में वे अङ्ग जन्म से ही निर्बल या नष्ट प्राय होते हैं। शरीर और मन के सम्मिलित पापों के शोधन के लिए जन्म जात रोग मिलते हैं या बालक अङ्ग-भंग उत्पन्न होते हैं। अंग भंग या निर्बल होने से उस अंग को अधिक काम नहीं करना पड़ता इसलिए सूक्ष्म शरीर का वह अंग विश्राम पाकर अगले जन्म के लिए फिर तरोताजा हो जाता है साथ ही मानसिक दुख मिलने से वह मन का पाप भार भी धुल जाता है।

मानसिक पाप भी जिस शारीरिक पाप के साथ घुला मिला होता है, वह यदि राजदड, समाज दण्ड या प्रायश्चित्य द्वारा इस जन्म से शोधित न हुआ तो अगले जन्म के लिये जाता है। परन्तु यदि पाप केवल शारीरिक है या उसमें मानसिक पाप का मिश्रण अल्प मात्रा में है, तो उसका शोधन शीघ्र ही शारीरिक प्रकृति द्वारा हो जाता है, जैसे नशा पिया— उन्माद आया। विप खाया मृत्यु हुई। आहर विहार में गडवडी की–बीमार पड़े। इस तरह शरीर अपने साधारण दोषों की सफाई जल्दी २ कर लेता है और इस जन्म का भुगतान इसी जन्म में कर जाता है। परन्तु गम्भीर शारीरिक दुर्गुण, जिनमे मानसिक जुड़ाव भी होता है, अगले जन्म में फल प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म शरीर के साथ जाते हैं।

भौतिक कष्टों का कारण हमारे सामाजिक पाप हैं। सम्पूर्ण मनुष्य जाति एक ही सूत्र में बँधी हुई है। विश्व व्यापी जीव तत्व एक है। आत्मा सर्व व्यापी है। जैसे एक स्थान पर यज्ञ करने से अन्य स्थानो का भी वायुमडल शुद्ध होता है और एक स्थान पर दुर्गन्ध फैलने से उसका प्रभाव अन्य स्थानो पर भी पढता है। इसी प्रकार एक मनुष्य के कुत्सित कर्मों के लिए दूसरा भी जिम्मेदार है। एक दुष्ट व्यक्ति अपने माता पिता को लज्जित करता है, अपने घर कुटुम्ब को शर्मिन्दा करता है। वे इसलिए शर्मिन्दा होते हैं कि उस व्यक्ति के कामों से उनका कर्तव्य भी बँधा हुआ है। अपने पुत्र, कुटुम्बी, या घर वाले को सुशिक्षित, सदाचारी न बना कर दुष्ट क्यो हो जाने दिया ? इसकी आध्यात्मिक जिम्मेदारी कुटुम्बियों की भी है। कानून द्वारा अपराधी को ही सजा मिलेगी, परन्तु कुटुम्बियो की आत्मा स्वयमेव शर्मिन्दा होगी, क्योंकि उनकी गुप्त

शक्ति यह स्वीकार करती है कि हम भी किसी हद तक इस मामले में अपराधी हैं। सारा समाज एक सूत्र में बँधा होने के कारण आपस में एक दूसरे की हीनता के लिए जिम्मेदार है। पड़ोसी का घर जलता रहे और दूसरा पड़ोसी खड़ा-खड़ा तमाशा देखे, तो कुछ देर बाद उसका भी घर जल सकता है। मुहल्ले के एक घर में हैजा फैले और दूसरे लोग उसे रोकने की चिंता न करें, तो उन्हें भी हैजा का शिकार होना पड़ेगा। कोई व्यक्ति किसी की चोरी, बलात्कार, हत्या, लूट आदि होती हुई देखता रहे और सामर्थ होते हुए भी उसे रोकने का प्रयत्न न करे, तो समाज उससे घृणा करेगा एवं कानून के अनुसार वह भी दंडनीय समझा जायगा।

ईश्वरीय नियम है कि हर मनुष्य स्वयं सदाचारी जीवन बितावे और दूसरों को अनीति पर न चलने देने के लिये भरसक प्रयत्न करे। यदि कोई देश या जाति अपने तुच्छ स्वार्थों में संलग्न होकर दूसरों के कुकर्मों को रोकने और सदाचार बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करती तो उसे भी दूसरों का पाप लगता है। इसी स्वार्थपरता रूप सामूहिक पाप से सामूहिक दण्ड मिलता है। भूकम्प, अति वृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी, महायुद्ध के कारण ऐसे ही सामूहिक दुष्कर्म होते हैं जिनमें स्वार्थ परता को प्रधानता दी जाती है और परोपकार की उपेक्षा की जाती है।

देखा जाता है कि अन्याय करने वाले अमीरों की अपेक्षा मूक पशु की तरह जीवन बिताने वाले भोले भाले लोगों पर दैवी प्रकोप अधिक होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि का कष्ट गरीब किसानों को ही अधिक सहन करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि अन्याय करने वाले से अन्याय सहने वाला

अधिक बडा पापी होता है । कहते हैं कि "बुजदिल जालिम का बाप होता है।" कायरता में यह गुण है कि वह अपने ऊपर जुल्म करने के लिये किसीको न किसीको न्योत ही बुलाता है। भेड की ऊन एक गडरिया छोड देगा तो दूसरा कोई न कोई उसे काट लेगा। कायरता, कमजोरी, अविद्या स्वय बडे भारी पातक हैं। ऐसे पातकियों पर यदि भौतिक कोप अधिक हो तो कुछ आश्चर्य नहीं ? सम्भव है कि उनकी कायरता को दूर करने एव स्वाभाविक सतेजता जगा कर निष्पाप बना देने के लिये अदृश्य सत्ता द्वारा यह घटनाएं उपस्थित होती हों। यह भौतिक दुर्घटनायें सृष्टि के दोष नहीं हैं वरन् अपने ही दोष हैं। अग्नि में तपा कर सोने की तरह हमें शुद्ध करने के लिये यह कष्ट बार बार कृपा पूर्वक आया करते हैं और ससार को जोरदार चेतावनियां देकर सामाजिक निष्पापता बढाने का आदेश दिया करते हैं।

दैविक, दैहिक, भौतिक, दुखों का कुछ विवेचन ऊपर की पक्तियों में किया जा चुका है । अब हम इसी लेखमाला के अन्तर्गत यह बतावेंगे कि किस प्रकार के पाप पुण्यों का फल कितने कितने समय में मिलता है ?

---

# कर्मों की तीन श्रेणियां

तीनों दुखों का निरूपण करने में पूर्व कर्म के तीन प्रकारों का जान लेना भी आवश्यक है। (१) संचित (२) प्रारब्ध और (३) क्रियमाण तीन प्रकार के कर्मों का संचय हमारी संस्कार भूमिका में होता है। चित्र गुप्त का परिचय लेख अन्तर्गत पाठक पढ़ चुके हैं कि मनुष्य की अन्तः चेतना ऐसी निष्पक्ष, निर्मल, न्याय शील और विवेक वान है कि अपने पराये का कुछ भी भेद भाव न करके सत्य निष्ठ न्यायाधीश की तरह हर एक भले बुरे काम विवरण अंकित करती रहती है।

दिन भर के कामों का यदि निरीक्षण किया जाय तो वे तीन श्रेणियों में बाँट देने पड़ेंगे। कुछ तो ऐसे होते हैं जो बिना जानकारी में होते हैं जैसे बुरे लोगों के मुहल्ले में या सत्संग में रहने से उनका प्रभाव किसी न किसी अंश में गुप्त रूप से अपने ऊपर पड़ जाता है। यह प्रभाव पड़ा तो, परन्तु हमने उसे इच्छा पूर्वक स्वीकार नहीं किया इस लिए वह हलका, निर्बल एवं कम प्रभाव वाला होकर हमारी भीतरी चेतना के एक कोने में पड़ा रहा ऐसे हीन वीर्य संस्कार बनाने वाले संचित कर्म कहे जाते हैं। जो कार्य विवशता से, दबाये जाने पर, असमर्थावस्था में, करने तो पड़े पर मनकी आन्तरिक इच्छा वही रही कि यदि विवशता न होती तो इस काम को

मैं कदापि न करता । इस तरह लाचारी से जो काम करने पड़े और मन जिनके विरुद्ध विद्रोह करता रहा एवं उस काम को स्वभाव बनाकर अपना नहीं लिया तो उस कार्य का संस्कार भी हलका, अल्प वीर्य और कम प्रभाव वाला होता है। ऐसे काम भी संचित कर्म की ही श्रेणी में आजाते हैं। इन संचित कर्मों के संस्कार बहुत कमजोर एवं हलके होते हैं इसलिए वे मनोभूमि के किसी अज्ञात कोने में सिमटे हुए हजारो वर्ष तक पड़े रहतेहैं यदि इन्हे प्रकट होने का कोई अच्छा अवसर न मिले तो यों हीं दबे दबाये पड़े रहते हैं । किन्तु यदि उसी प्रकार के बुरे कर्म कभी जान बूझ कर स्वेच्छा से, विशेष मनोयोग के साथ, किये गए तो वे सड़े गले संचित संस्कार भी कुलबुलाने लगते हैं और अच्छे घोड़ो के झुण्ड में पड़ कर लँगड़े घोड़े भी चलने लगते हैं वैसे ही वे भी कब्र ने से निकल कर जीवित हो जाते हैं । जिस प्रकार घुना हुआ बीज भी अच्छी भूमि और अच्छी वर्षा पाकर उग आता है वैसे ही संचित संस्कार भी अपनी जाति के बलवान कर्मों की सहायता पाकर उग आते हैं । हिमायत पाकर उनकी हिम्मत दूनी हो जाती है। परन्तु यदि उन संचित संस्कारों को लगातार विपरीत स्वभाव के बलवान कर्म संस्कारों के साथ रहना पड़े तो वे नष्ट भी हो जाते हैं। गर्म जगह में रखा हुआ एक घडा पानी गर्मी के प्रभाव से आखिर एक दो महीने में सूख ही जाता है इसी प्रकार उत्तम कर्मों के संस्कार जमा हो रहे हों तो ये बेचारे बुरे संस्कार उनकी गर्मी में जल कर नष्ट भी हो जाते हैं । धर्म ग्रन्थो में ऐसा उल्लेख मिलता है कि तीर्थ यात्रा आदि अमुक शुभ धर्म कार्य करने से इतने जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं असल में यह संकेत इन अल्पवीर्य वाले

संचित संस्कारों के सम्बन्ध में ही है। भले और बुरे दोनों ही प्रकार के संचित कर्म संस्कार अनुकूल परिस्थिति पाकर फल दायक होते हैं एवं तीव्र प्रतिकूल परिस्थितियों में नष्ट भी हो जाते हैं।

प्रारब्ध—वे मानसिक कर्म होते है जो स्वेच्छा पूर्वक, जान बूझकर, तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर, किये जाते हैं। इन कार्यों को विशेष मनोयोग के साथ किया जाता है इसलिए उनका संस्कार भी बहुत बलवान बनता है। हत्या, खून, डकैती, विश्वास घात, चोरी, व्यभिचार, जैसे प्रचंड क्रूर कर्मों की प्रतिक्रिया अन्तःकरण में बहुत ही तीव्र होती है उस विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल देने के लिए आध्यात्मिक पवित्रता निरंतर व्यग्र बनी रहती है। और एक न एक दिन उसे निकाल कर बाहर कर ही देती है।

हम बता चुके हैं कि हमारी अन्तः चेतना निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह हमारे हर काम को देखती रहती है और उसकी न्यूनता अधिकता के परिणाम के अनुसार दंड की व्यवस्था करती रहती है। चूंकि मानसिक दंड अपने आप, अन्दर ही अन्दर पूरा नहीं हो सकता, इसके लिए दूसरे साधनों की भी आवश्यकता होती है, दंड कार्य को पूरा करने के लिए सूक्ष्म लोक में से उसी प्रकार का घटना क्रम उपस्थित करने के लिए हमारी अन्तः चेतना एक वातावरण तैयार करती है। इस तैयारी में कभी कभी बहुत समय भी लग जाता है। जैसे स्थूल स्वभाव के निवारण के लिए चोर रूपी को दंड की आवश्यकता है। अब यह देखा जायगा कि फल किस ढंग

का है उनकी शुद्धि किस दर्जे के शोक से पूरी हो सकती है। अन्त चेतना वैसी ही परिस्थितियाँ पैदा करने में भीतर ही भीतर लगी रहेगी। वह शरीर में ऐसे तत्त्व पैदा करेगी जिससे पुत्र उत्पन्न हो, उस पुत्र शरीर में ऐसी आत्मा का मेल मिलावेगी जिसे उसके कर्मों के अनुसार दस वर्ष ही जीना पर्याप्त हो, दस वर्ष का पुत्र हो जाने पर वही हमारी अन्त. प्रेरणा गुप्त रूप से पुत्र पर पिल पड़ेगी और उसे रोगी करके मार डालेगी एव शोक का इच्छित अवसर पैदा कर देगी। ऐसे अवसर तैयार करने में केवल अपना ही कार्य अकेला नहीं होता वरन् दूसरे पक्ष का भी कार्य होता है। दोनो ओर की चेतनाएँ अपने अपने लिए अवसर तलाश करती फिरती हैं और फिर जब उन्हें इच्छित जोड़ मिल जाता है तो एक घटना की ठीक भूमिका बँध जाती है। ऐसे कार्यों में कई बार एक दो तीन या कई जन्मों का समय लग जाता है। लडकी के लिए वर और वर के लिए लडकी की तलाश बहुत दिनों तक जारी रहती है, सैकडो प्रसग उठाये जाते हैं पर कुछ न कुछ कमी होने से वे तय नहीं होते जब दोनो पक्ष रजामद हो जाते हैं तो विवाह बहुत जल्द हो जाता है। इसी प्रकार पिता को पुत्रशोक और पुत्र को अल्पायु का सयोग, जब दोनो ही विधान ठीक बैठ जाते हैं तो वे एकत्रित हो जाते हैं। अफ्रीका मे वेन्सस नामक एक दस फुट ऊँचा झाड होता है इसकी डालियो मे से सूत जैसे अ कुर फूटते हैं यह अ कुर बढते हैं और इधर उधर हवा में झूलते रहते हैं। दूसरा कोई अ कुर जब उनसे छू जाता है तो वे दोनो आपस में गुथ जाते हैं और रस्सी की तरह बल डाल कर एक हो जाते हैं। जब

तक दूसरे अंकुर से भेंट न हो तब तक सूत बढ़ते ही रहते हैं और कभी न कभी वे किसी से न किसी से मिल ही जाते हैं। कोई सूत तो चार छै अंगुल दूरी पर ही जाकर किसी से मिलकर लिपट जाता है कोई कोई चार चार फुट लम्बा होने के बाद सफल होता है। यही हालत कर्म फलों की है। शारीरिक दंड एकांगी है विष खाते ही तुरन्त मृत्यु हो जाती है। परन्तु मानसिक दंड में अपवाद है। जैसे क्रूरता से प्रेरित होकर किसी की हत्या की गई वह यदि प्रकट होगई तो राज्य द्वारा दण्ड मिल जायगा किन्तु यदि हत्यारे ने अपना कार्य छिपा लिया तो उसका अन्तःकरण तुरन्त ही पाप दण्ड न दे बैठेगा. परन्तु उसी दिन से बेल्सम पेड़ की तरह अंकुर फोड़कर इस तलाश में फिरेगा कि हिंसा वृत्ति से घृणा कराने के लिए हिंसा में जो दुख होता है उसका अनुभव उसे कराऊँ। जब दूसरी ओर का भी कोई ठीक अंकुर मिल जाता है तो दोनों आपस में लिपट कर एक निर्धारित घटना की भूमिका बन जाते हैं। उपरोक्त कारणों से कभी कभी अचानक सत्कर्म करते हुए भी दुख उपस्थित हो जाता है और कभी कभी बुरे काम करते हुए भी कोई दुख नहीं मिलता, इसका कारण उपयुक्त अवसर तैयार होने में विलम्ब लगना ही होता है।

कोई कोई आत्म दर्शी योगी यह बता देते हैं कि भविष्य में तुम्हारे लिए यह होने वाला है. और सचमुच वैसा हो भी जाता है। ऐसे अवसरों पर ऐसा संदेह न करना चाहिए कि मनुष्य परतंत्र है, प्रारब्ध में जो लिखा है वही होता है। आत्म-दर्शी महानुभावों का भविष्य कथन मनुष्य की परतन्त्रता के कारण नहीं है। वरन इसलिए है कि उन्होंने देख लिया कि

इसका प्रारब्ध कर्म अब अपना ताना बाना बुन चुका है उसका छूटना मुश्किल है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वे अदृष्ट परिस्थिति को देखकर उसे प्रकट कर देते हैं। मिसल को देखकर, हाकिम के स्वभाव को जानकर, पेशकार बता देता है कि क्या फैसला सुनाया जाने वाला है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मुद्दई, मुद्दाअलाह, गवाही, सबूत, वकील का कोई महत्व नहीं है। इसको प्रारब्ध में क्या लिखा है, यह बता देने का अर्थ यह है कि इसने एक समय ऐसे काम किये थे जिसका फल अब यह होने जा रहा है, तकदीर और तदबीर दो बातें नहीं है। वरन् एक ही वस्तु के दो नाम है। कर्म का परिपाक लेकर जब वह फल बनता है तब तकदीर कहा जाता है। कच्चा आम तदबीर है और पक्का आम तदबीर। नया कर्म तदबीर है जो आगे तकदीर बन जायगा। इसी प्रकार पुरानी तदबीर आज फल देते समय तकदीर कही जा रही है। कर्म बछिया है और प्रारब्ध बूढी गाय। समय के अन्तर से एक वस्तु के दो नाम पड गये हैं।

पाठक समझ गये होंगे कि मानसिक पापों का फल किस प्रकार मिलता है और उसमें विलम्ब होजाने का क्या कारण है? दैविक आपत्तिया क्रम पूर्वक, व्यवस्था के साथ, आती हैं पर लोग उन्हें दैव का प्रकोप, ईश्वर इच्छा, ससार दुख मय है, आदि शब्दों के द्वारा मन का सतोष करते हैं। यथार्थ मे ईश्वर किसी के लिए भी दुख शोक उपस्थित नहीं करता, न उसकी किसी को कष्ट में डालने की इच्छा है और न यह ससार ही दुख मय है। मकड़ी अपने आप अपना जाला बुनती है और उसमे खुद ही फँसती, उलझती, लटकती रहती है।

गन को अशुभ, अधर्मी, पापी बनाकर अपने लिए दुख द्वन्दों के कांटे खुद ही बोते हैं और जब वे चुभते हैं तो रोते चिल्लाते हैं तथा दूसरों को दोष देते हैं। यहां एक बात और भी स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि प्रारब्ध फल आकस्मिक तरीके से मिलेगा जैसे रोग से मृत्यु, मकान गिर पड़ना, धन खोजाना, गिर पड़ने से चोट लगना, अंग भंग होजाना आदि। दूसरे व्यक्तियों द्वारा जान बूझ कर ऐसे कर्म नहीं किये जाते क्योंकि उसमें दो बुराइयां हैं एक तो अपकार करने वाले व्यक्ति के लिए क्षोभ उत्पन्न होने से वे दुर्गुण और बढ़ेंगे जिससे मनकी उद्विग्नता और अधिक बढ़ जायगी दूसरे अपकार करने वाले व्यक्ति को उसी चक्र में फँसाना पड़ेगा। जान बूझ कर व्यक्तियों द्वारा जो कर्म किये जा रहे हैं वे नवीन कर्म हैं और अनायास आकस्मिक ढंग से कष्ट आ पड़ते हैं वे प्रारब्ध के भोग हैं।

क्रियमाण कर्म शारीरिक हैं जिनका फल प्राय. साथ का साथ ही मिलता रहता है। नशा पिया कि उन्माद आया। विष खाया कि मृत्यु हुई। शरीर जड़ तत्वों का बना हुआ है। भौतिक तत्व स्थूलता प्रधान होते हैं। उनमें तुरन्त ही बदला मिलता है। अग्नि के छूते ही हाथ जल जाता है। नियम विरुद्ध आहार विहार करने पर रोगों की पीड़ा या निर्बलता का अविलम्ब आक्रमण हो जाता है और उनकी शुद्धि भी शीघ्र ही होजाती है। मजदूर परिश्रम करता है बदले में उसे पैसे मिल जाते हैं। जिन शारीरिक कर्मों के पीछे कोई मानसिक गुत्थी नहीं होती केवल शरीर द्वारा शरीर के लिए ही किये जाते हैं वे क्रियमाण कहलाते हैं। पाठक समझ गये होंगे कि संचित कर्मों का फल मिलना संदिग्ध है यदि अवसर मिलता

है तो वे फलवान होते हैं नहीं तो विरोधी परिस्थितियों से टकरा कर नष्ट होजाते हैं। प्रारब्ध कर्मों का फल मिलना निश्चित है परन्तु उसके अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने में कुछ समय लग जाता है। यह समय कितने दिन का होता है इस सम्बन्ध में कुछ नियत मर्यादा नहीं है, वह आज का आज भी हो सकता है और कुछ जन्मों के अन्तर से भी हो सकता है। किन्तु प्रारब्ध फल होते वही हैं जो अचानक-घटित हों और जिसमें मनुष्य का कुछ वश न चले। पुरुषार्थ की अवहेलना से जो असफलता मिलती है उसे कदापि प्रारब्ध फल नहीं कहा जा सकता। क्रियमाण तो प्रत्यक्ष हैं ही उनके बारे में ऊपर बता ही दिया गया है कि निश्चित फल वाले शारीरिक कर्म क्रियमाण हुआ करते हैं। इनका फल मिलने में अधिक समय नहीं लगता। इस प्रकार तीन प्रकार के कर्म और उसके फल मिलने की मर्यादा के सम्बन्ध मे ऊपर कुछ प्रकाश डाल दिया गया है।

कष्टों का स्वरूप अप्रिय है, उनका तत्कालिक अनुभव कड़ुआ होता है अन्तत वे जीव के लिए कल्याणकारी और आनन्द दायक ही सिद्ध होते हैं। उनसे दुर्गुणो के शोधन और सद्गुणों की वृद्धि में असाधारण सहायता मिलती है। आनन्द स्वरूप, आत्म प्रकाश मय जीवन, और सुख मय संसार मे कांटो का थोड़ा स्वाद परिवर्तन इसलिए लगाया गया है कि प्रगति मे बाधा न पड़ने पावे। घडी में चाबी भर देने से उसकी चाल फिर ठीक हो जाती है, हारमोनियम में हवा धोंकते रहने मे उसके स्वर ठीक तरह बजते हैं, पेडिल चलाने से साईकिल ठीक तरह घूमती है, अग्नि की गर्मी से पकर भोजन पक जाते हैं। थोडा सा कष्ट भी जीवन की

सुख वृद्धि के लिए आवश्यक है। संसार में जो कष्ट हैं वह इतना ही है और ऐसा ही है। किन्तु स्मरण रखिये जितना भी थोड़ा बहुत दुःख है वह हमारे अन्याय का, अधर्म का, अनर्थ का फल है। आत्मा दुःख रूप नहीं है, जीवन दुःख मय नहीं है और न इस संसार में ही दुःख है।

आप दुःखों से डरिये मत, घबराइये मत, काँपिये मत, उन्हें देख कर चिन्तित या व्याकुल मत हूजिए, वरन उन्हें सहन करने को तैयार रहिए। कटुभाषी किन्तु सच्चे सहृदय मित्र की तरह उनसे भुजा पसार कर मिलिए। वह कटु शब्द बोलता है, अप्रिय समालोचना करता है, तो भी जब जाता है तो बहुत सा माल खजाना उपहार स्वरूप दे जाता है। बहादुर सिपाही की तरह सीना खोल कर खड़े हो जाइए और कहिए कि "ए आने वाले दुःखो! आओ!! ए मेरे बालको चले आओ!! मैंने ही तुम्हें उत्पन्न किया है, मैं ही तुम्हें अपनी छाती से लगाऊँगा। दुराचारिणी वेश्याकी तरह तुम्हें जार पुत्र समझ कर छिपाना या भगाना नहीं चाहता वरन सती साध्वी के धर्म पुत्र की तरह तुम मेरे अंचल में सहर्ष क्रीडा करो। मैं कायर नहीं हूँ जो तुम्हें देख कर रोऊँ, मैं नपुंसक नहीं हूँ जो तुम्हारा भार उठाने से गिड़गिड़ाऊँ, मैं मिथ्याचारी नहीं हूँ जो अपने किये हुए कर्म का फल भोगने में मुँह छिपाता फिरूँ। मैं सत्य हूँ, शिव हूँ, सुन्दर हूँ। आओ मेरे प्रताप के पुरूप मानस पुत्रो! चले आओ! मेरी कुटी में तुम्हारे लिए भी स्थान है। मैं शूर वीर हूँ, इसलिए हे कष्टो! तुम्हें स्वीकार करने से मुँह नहीं छिपाता और न तुमसे बचने के लिए किसी की सहायता चाहता हूँ। तुम मेरे साहस की परीक्षा लेने आये हो, मैं तैयार हूँ, देखो गिड़गिड़ाता नहीं हूँ;

साहस पूर्वक तुम्हें स्वीकार करने के लिए छाती खोले खड़ा हूं।"

खबरदार ! ऐसा मत कहना 'कि यह संसार बुरा है, दुष्ट है, पापी है, दुख मय है, ईश्वर की पुण्य कृति, जिसके कण कण में उसने कारीगरी भरदी है कदापि बुरी नहीं हो सकती। सृष्टि पर दोषारोपण करना तो उसके कर्ता पर आक्षेप करना होगा। "यह घड़ा बहुत बुरा बना है"। इसका अर्थ है कुम्हार का नालायक बनाना। आपका पिता इतना नालायक नहीं है जितना कि आप 'दुनिया दुख मय है' यह शब्द कह कर उसकी प्रतिष्ठा पर लाछन लगाते हैं। ईश्वर की पुण्य भूमि में दुख का एक अणु भी नहीं है। हमारा अज्ञान ही हमारे लिए दुख है। आइए, अपने अन्दर से समस्त कुविचारों और दुर्गुणों को धोकर अन्त करण को पवित्र करलें जिससे दुखों की अन्त्यन्तिक निवृत्ति हो जावे और हम परम पद को प्राप्त करसकें।

# अपनी दुनियां के स्वयं निर्माता

एक दार्शनिक का मत है कि संसार एक निष्प्राण वस्तु है। इसे हम जैसा बनाना चाहते हैं वह वैसा ही बनजाता है। जीव चैतन्य है और कर्ता है। संसार पदार्थ है और जड़ है। चैतन्य कर्ता में यह योग्यता होती है कि वह जड़ पदार्थ को इच्छा और आवश्यकता के उपयोग कर सके। कुम्हार के सामने मिट्टी रखी हुई है, वह उससे घड़ा भी बना सकता है और दीपक भी। सुनार के सामने सोना रखा हुआ है वह उससे मन चाहा आभूषण बना सकता है। दर्जी के हाथ में सुई है और कपड़ा भी। वह चाहे तो कुर्ता सी सकता है, चाहे पजामा। संसार ठीक इसी प्रकार हमारे सामने रखा हुआ है उसमें सत रज तम तीनों का मिश्रण है चुनने वाला अपनी मर्जी के मुताबिक इनमें से चाहे जो वस्तु चुन सकता है। बाग में कीचड़ भी है, गंदगी भी है और फूलों की सुगन्ध भी है। कीड़े कीचड़ में घुस पड़ते हैं, मक्खियाँ गन्दगी ढूंढ निकालती हैं और भौंरे सुगन्धित फूलों पर जा पहुँचते हैं। सब को अपनी इच्छित वस्तु मिल जाती है। चमगादड़ और उल्लू रात में भी प्रकाश पा लेते हैं, मधु मक्खियों को घास पात के बीच मिठाई के ढेर मिल जाते हैं, सांप को आक से भी विष वर्धक तत्व प्राप्त हो जाते हैं। त्रिगुण मयी प्रकृति में तीनों तरह की वस्तुएँ मौजूद हैं। इस दुकान पर खट्टा, मीठा, नमकीन तीनों तरह का सौदा बिकता है। जो जैसा ग्राहक आता है अपनी मन पसन्द का सामान खरीद

ले आता है। इस भडार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। हर वस्तु के गोदाम भरे हुए हैं। माता ने षट्रस व्यजन तैयार करके रखे हैं जिस बच्चे को जो रुचिकर हो खुशी खुशी खा सकता है।

त्रिगुण भयी प्रकृति के दोनो पहलू मौजूद हैं, एक भला, दूसरा बुरा, एक काला, दूसरा सफेद, एक धर्म, दूसरा अधर्म, एक सुख, दूसरा दुख, चुनाव की पूरी पूरी आजादी आपको है। दुनिया का असली रूप क्या है, यह प्रथम में ही बताया जा चुका है पर वह एक तात्विक व्याख्या है, व्याव-दृष्टि से हर व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनियां है। एक व्यक्ति चोर है उसके मानसिक आकर्षण से बहुत से चोरों से उसकी मैत्री हो जायगी और जेल मे, समाज में, घर में, सब जगह उसे चोरी की ही चर्चा मिलेगी। घर वाले उससे बात करेंगे तो चोरी की, माता बुरा बतावेगी, स्त्री अच्छा, कोई चोरी का समर्थन करेगा कोई विरोध। घर से बाहर निकलने पर उसके परिचित लोग उससे जब मिलेंगे उसके पेशे चोरी के बारे में ही भला बुरा वार्तालाप करेंगे, अपने साथी चोरों से मिलेगा तो वही चोरी की बातें होंगी, जेल में भी चोर-चोर मौसेरे भाई की तरह मिल बैठेंगे और अपने प्रिय विषय की बातें खूब घुल घुल कर करेंगे। इस प्रकार उस चोर के लिए यह सारा संसार चोरी की धुरी पर नाचता हुआ दिखाई देगा, उसको विश्व का सबसे बड़ा काम चोरी ही दिखाई पडेगा। अन्य बातो की ओर उसका ध्यान बहुत ही स्वल्प जायगा, अन्य कार्यों पर उसकी उपेक्षा दृष्टि ही पड़ेगी। इसी प्रकार व्यभिचारी व्यक्ति की दृष्टि में सम्पूर्ण स्त्रियां वेश्याये व्यभिचारिणी, कुमार्ग गामिनी दिखाई देंगी, उसी

प्रकार की पुस्तकें तस्वीरें खिंच खिंच कर उसके पास जमा होजाँयगी, सगी साथी उसी प्रकार के मिल जाँयगे, उसके मस्तिष्क में सब से बड़ा प्रश्न काम वासना सम्बन्धी ही सदा रहेगा। नशेबाज अपने स्वभाव के भांड बन्दों को समेट कर अपनी अलग दुनियाँ बना लेते हैं।

एकही व्यक्ति कई लोगोंको कई प्रकारका दिखाई पड़ता है। माता उसे स्नेह भाजन मानती है, पिता आज्ञाकारी पुत्र मानता है, गुरु सुयोग्य शिष्य समझता है, मित्र हमजोड़ साथी समझते हैं, स्त्री प्राण वल्लभ मानती है, पुत्र उसे पिता समझता है, शत्रु, वध करने योग्य समझता है, दुकानदार ग्राहक समझता है, नौकर मालिक मानता है, घोड़ा सवार समझता है, पालतू सुग्गा उसे कैदी बनाने वाला जेलर देखता है, खटमल पिस्सू उसे स्वादिष्ट खून से भरा हुआ कोठा समझते हैं। यदि इन सब संबंधियों की माता, पिता, गुरु, मित्र, स्त्री, पुत्र, शत्रु दुकानदार, नौकर, घोड़ा, सुग्गा, खटमल पिस्सू आदि की उन मानसिक भावनाओं का चित्र आप को दिखाया जा सके तो आप देखेंगे कि उस एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में यह सब कैसी कैसी विचित्र कल्पना किये हुए हैं जो एक दूसरे से बिलकुल नहीं मिलती। इनमें से एक भी कल्पना ऐसी नहीं है जो उस व्यक्ति के ठीक ठीक और पूरे स्वरूप को प्रकट करती हो। जिसे, उससे जितना एवं जैसा काम पड़ता है वह उसके सम्बन्ध में वैसी कल्पना कर लेता है। तमाशा तो यह है यह मनुष्य स्वयं भी अपने बारे में एक ऐसी ही कल्पना किये हुए है। मैं वैश्य हूँ, धनपती हूँ, सुन्दर हूँ, पुत्र रहित हूँ, कुरूप हूँ, नगर मान्य हूँ, दुखी हूँ, बुरे लोगों से घिरा हुआ हूँ, आदि नाना प्रकार की कल्पनायें कर लेता है और इस कल्पना लोक में

जीवन भर विचरण करता रहता है । जैसे दूसरे लोग उसके बारे में अपने मतलब की कल्पना कर लेते हैं वैसे ही मन भी अपने बारे में इन्द्रियों की अनुभूति के आधार पर अपने संबंध में एक लँगड़ी लूली कल्पना कर लेता है और उसी कल्पना में लोग नशेबाज की तरह उड़ता रहता है। "मैं क्या हूँ ?" इस मर्म को यदि वह किसी दिन समझ पावे तो जाने कि मैंने अपने बारे में, कितनी गलत धारणा बना रखी थी।

लोग ऐसी ही अपनी अपनी भावुकता पूर्ण मानसिक उडान के हवाई घोडो पर चढ़कर सचाई के धरातल से बहुत ऊँचे आकाश में उडते रहते हैं और उसी नशे में कोई मन के लड्डू खाया करता है कोई मन के चने चबाया करता है, कोई शराबी सामने वाली दीवार को गालियां देकर अपना सिर फोड रहा है और कोई कुत्ते को बाहुपाश में कसकर प्रियतमा के चुम्बन आलिंगन का मजा ले रहा है। हम लोग अज्ञान के नशे में सो रहे हैं किसी को महलों के सपने आ रहे हैं कोई भयंकर दुस्वप्न देखकर भयभीत हो रहा है। किसी शेखचिल्ली की शादी हो रही है, कोई पगला अमीरी और बादशाही बघार रहा है। दुनिया के पागल खाने में तरह तरह की खोपडियां डोल रही हैं। यह सभी मूर्तियाँ अपने ढङ्ग की विचित्र हैं, सभी अपने को होशियार मान रहे हैं। आप कभी पागल खाने को देखने गये हो और अधिक समय तक वहाँ बन्द रहने वाले "बुद्धिमानो" की बातें सुनी हो तो आसानी से दुनियाँदार लोगो के उन स्वप्नों की तुलना कर सकते हैं जो कि वह दुनियाँ के बारे मे सोते समय देखते रहते हैं।

मनुष्यों को नाना प्रकार के दुखों में रोते हुए और नाना सुखो मे इतराते हुए हम देखते हैं। "दुनियाँ बहुत बुरीहै, जमाना

बड़ा खराब है, ईमानदारी का युग चला गया, चारों ओर बेईमानी छाई हुई है, सब लोग धोखेबाज हैं, धर्म धरती पर से उठ गया"। ऐसी उक्तियाँ जो आदमी बार बार दुहराता है समझ लीजिए कि वह खुद धोखेबाज और बेईमान है। इसकी इच्छित वस्तुएं इसके चारों ओर इकट्ठी होगई हैं और उनकी सहायता से सुव्यवस्थित कल्पना चित्र इसके मन पर अंकित हो गया है। जो व्यक्ति यह कहा करता है दुनियाँ में कुछ काम नहीं है, बेकारी का बाजार गर्म है, उद्योग धंधे उठ गये, अच्छे काम मिलते ही नहीं, समझ लीजिए कि इसकी अयोग्यता इसके चारों पर छाई हुई है और जहां जाता है वहां के दर्पण में अपना मुख देख आता है। जिसे दुनिया स्वार्थी, कपटी, दंभी, दुखमय, कलुषित, दुर्गुणी, असभ्य, दिखाई पड़ती है समझ लीजिए कि इसके अन्तर में इन्हीं गुणों का बाहुल्य है। दुनियां एक लम्बा चौड़ा बहुत बढ़िया बिल्लौरी काच का चमत्कार दर्पण है इसमें अपना मुँह हूबहू दिखाई पड़ता है। जो व्यक्ति जैसा है इसके लिए त्रिगुण मयी सृष्टि में से वैसे ही तत्व निकल कर आगे आजाते हैं।

क्रोधी मनुष्य जहां जायगा, कोई न कोई लड़ने वाला उसे मिलही जायगा, घृणा करने वाले को कोई न कोई घृणित वस्तु मिल ही जायगी। अन्यायी मनुष्य को सब लोग बड़े बेहूदे, असभ्य और दण्ड देने योग्य दिखाई पड़ते हैं। होता यह है कि अपनी मनोभावनाओं को मनुष्य अपने सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसा कि वह स्वयं है। साधुओं को दुराचारी स्त्रियों से पाला नहीं पड़ता, पिपासुओं को सद्ज्ञान मिल ही जाता है, जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा पूरी होती ही है, सतगुणी आत्माएं हर युग में

रहती हैं और उनके आस पास सदैव सतयुग वर्तता रहता है।

हमारा यह कहने का तात्पर्य कभी नहीं है कि दुनियाँ दूध से धुली हुई है और आप अपने दृष्टि दोष से ही उसे बुरा समझ बैठे हैं। पीछे की पंक्तियों में यह बार बार दुहराया जा चुका है कि दुनिया त्रिगुण मयी है। हर एक वस्तु तीन गुणो से बनी हुई है। उसमें आपसे छोटे दर्जे के बच्चे भी पढते हैं, आपकी सम कक्षा में पढने वाले भी हैं और वे भी हैं जो आपसे बहुत आगे है। तीनों ही किस्म के लोग यहां हैं। सतोगुणी वे विद्यार्थी है, जो आपसे ऊँची कक्षा के हैं, रजोगुणी वे हैं जो सम कक्षा में पढ रहे हैं, तमोगुणी पिछली कक्षा वाले को कह सकते हैं। डाकू की तुलना में चोर सतोगुणी है क्योकि डाकू की अपेक्षा चोर में उदारता के कुछ अश अधिक हैं, किन्तु चोर और डाकू दोनों से श्रम जीवी मजदूर ऊचा है उससे ब्राह्मण बडा है और ब्राह्मण से साधु बडा है। डाकू से साधु बहुत ऊँचा है पर जीवन मुक्त आत्माओं से साधु भी उतना ही नीचा है, जितना साधु से डाकू। यह डाकू क्या सब से नीचा है? नहीं—सर्प से वह भी ऊँचा है। सर्प अपनी सर्पिनी के लिए उदार है, डाकू अपने परिवार में उदारता बरतता है, चोर अपने परिचित के यहां चोरी नहीं करता, ब्राह्मण अपनी जाति के कल्याण मे दत्तचित्त रहता है, साधु मानवमात्र से उदारता करता है, जीवन मुक्तों को मनुष्य या चींटी के बीच कुछ अन्तर दिखाई नहीं पडता। वह सर्वत्र एक ही आत्मा को देखता है। तात्पर्य यह है कि परम पद पाने से पूर्व हर एक प्राणी अपूर्ण है, उसमें नीच स्वभाव कुछ न कुछ रहेगा ही, जिस दिन सारी नीचता समाप्त होजायगी

उस दिन तो वह उन्नति के अन्तिम शिखर पर पहुंच कर चरम ध्येय को ही प्राप्त कर लेगा। सृष्टि का हर प्राणी आज के वर्तमान स्वरूप में अपूर्ण है। अपूर्ण का अर्थ है सदोष। बेशक सब मिलाकर दोष से गुण ज्यादा है। अधर्म बेशक मौजूद है पर उससे धर्म ज्यादा है, अँधेरा बहुत है पर उससे प्रकाश ज्यादा है, दुनियाँ वाले बहुत खराब हैं पर उनमें खराबी से कहीं ज्यादा अच्छाई मौजूद है। हमें उस अच्छाई पर ही अपनी दृष्टि रखनी चाहिए, अच्छाई में ही आनंद लेना चाहिए, और अच्छाई को ही बढ़ाना चाहिए। दिन में हम जगते हैं, प्रकाश में काम करते हैं, उजाले में रहना पसंद करते हैं, जब रात का अँधेरा सामने आता है तो आँखें बन्द करके सो जाते हैं, जिन्हें रात में भी काम करना है वे दीपक जला लेते हैं। हमारी यह उजाले में काम करने और अँधेरे में सो जाने की प्रवृत्ति यह सिखाती है कि संसार के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए। किस आदमी में क्या सद्गुण हैं, उसे ढूंढ निकालिए और उन्हीं से संपर्क रखिए, उन्हीं में आनन्द लीजिए, उन्हें ही प्रोत्साहित कीजिए। जो दोष हों उन्हें भी देखिए तो सही पर उनमें उलझिए मत। रात की तरह आँखें बन्द कर लीजिए। महर्षि दत्तात्रय की कथा जानने वालों को विदित होगा कि वे दुनियाँ के काले और सफेद दोनों पहलुओं का समन्वय करते रहे तब तक बड़े चिन्तित और दुखी रहे। जब उन्होंने काले पन से दृष्टि हटाली और सफेदी पर ध्यान दिया तो उन्हें सभी जीव आदरणीय, उपदेश देने वाले और पवित्र दिखाई पड़े। उन्होंने चौबीस गुरु बनाये। उनमें कुत्ता, बिल्ली, सियार, मकड़ा, मक्खी, चील, चींटी जैसे जीव भी थे। इससे प्रतीत हुआ कि कोई भी प्राणी

घृणित नहीं। सबके अन्दर महान आत्मा है और वे महानता के लिए आगे बढ रहे हैं जब हम अपनी दृष्टि को गुण ग्राहक बना लेते हैं तो दुनियाँ का सारा तख्ता पलट जाता है, दोष के स्थान पर गुण, बुराई के स्थान पर भलाई, दुख के स्थान पर सुख आ बैठता है। बहुत बुरी दुनियाँ, बहुत अच्छी बन जाती है।

तिल की ओट ताड छिपा हुआ है। भूल भुलैया के खेल मे चोर दरवाजा जरा से गलती के कारण छूट जाता है बाजीगर एक पोली लकड़ी रखता है उसमें एक तरफ डोरा पीला होता है दूसरी तरफ नीला। इस छेद में से डोरा खींचता है तो पीला निकलता है और उधर से खींचने पर वह नीला हो जाता है। लोग अचभा करते हैं कि डोरा किस तरह रङ्ग बदलता है। पर उस लकडी के पोले भाग में डोरे का एक भाग उलझा रहने के कारण यह अदल बदल होती रहती है। ससार किसी को बुरा दीखता है किसी को भला, इसका कारण हमारी दृष्टि की भीतरी उलझन है। इस उलझन का रहस्य भरा सुलझाव यह है कि आप अपना दृष्टि कोण बदल डालिए। अपने पुराने कल्पना जजालों को तोड फोड कर फेंक दीजिए। तरह तरह का उलझनों भरे जाल जो मस्तिष्क में बुन गये हैं उन्हें उखाड कर एक कोने में डाल दीजिए। अपना तीसरा नेत्र, ज्ञान नेत्र, खोलकर पुरानी दुनियां को नष्ट कर डालिए। वर्तमान कलियुग को प्रलय के गर्त मे गिर पडने दीजिए और अपना सतयुग अपने मानस लोक मे स्वय रच डालिए। आप दुनिया के अँधेरे को तमोगुण को देखना बन्द करके प्रकाश को, सतोगुण को, देखिए। फिर देखिए कि यह दुनियां जो रौरव नरक सी दिखाई पडती थी, एक दिन

बाद स्वर्ग बन जाती है। कल आपको अपना पुत्र अवज्ञा कारी लगता था, स्त्री कर्कश प्रतीत होती थी, भाई जान लेने की फिक्र में थे, मित्र कपटी थे, वे अपनी दृष्टि बदलने के साथ ही बिलकुल बदल जायँगे। कारण यह है कि जितना विरोध दिखाई पड़ता है वास्तव में उसका सौवां हिस्सा ही मतभेद होता है, शेष तो कल्पना के रंग दे देकर बढ़ाया जाता है। पुत्र ने सरल स्वभाव से या किसी अन्य कारण से आपका कहना नहीं माना। आपने समझ लिया कि यह मेरा अपमान कर रहा है। अपमान का विचार आते ही क्रोध आया, क्रोध के साथ अपने सुप्त मनोविकार जागे और उनके जागरण के साथ एक भयंकर तामसी मानसिक चित्र बन गया। जैसे मन में भय उत्पन्न होते ही झाड़ी में से एक बड़े बड़े दाँतों वाला, लाल आँखों वाला, काला भुसंड भूत उपज पड़ता है वैसे ही क्रोध के कारण जगे हुए मनो-विकारों का आसुरी मान-सिक चित्र पुत्र की देह में से झाड़ी के भूत की तरह निकल पड़ता है। बेचारा पुत्र यह जानता भी न था कि मैं जानबूझ कर अवज्ञा कर रहा हूँ, यह कोई पाप है, या इससे पिताजी नाराज होंगे पर परिणाम ऐसा हुआ जिसकी कोई आशा न थी। पिताजी आग बबूला होगये, घृणा करने लगे, दंड देने पर उतारू होगये और अपने दुर्भाग्य पर आसू बहाने लगे। न कुछ का इतना बवंडर बन गया। पुत्र सोचता है कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, खेलने जाने की धुन में पिता को पानी का गिलास देना भूल गया था या उपेक्षा कर गया था, इतनी सी बात पर इतना क्रोध करना, लांछन लगाना, दंड देना कितना अनुचित है। इस अनुचितता के विचार के साथ ही पुत्र को क्रोध आता है, वह भी इसी प्रकार के अपने मनो विकारों को

उकनाकर पिता के सरल हृदय में दुष्टता, मूर्खता, क्रूरता, शत्रुता और न जाने कितने कितने दुर्गुण आरोपित करता है और वह भी एक वैसा ही भूत उपजा लेता है। दोनो में कटुता बढती है। वे भूत आपस में लडते हैं और तिल का ताड बना देते हैं। कल्पना का भूत रत्ती भर दोष का, बढाते बढाते पर्वत के समान बना देता है और वे एक दूसरे के घोर शत्रु, जान के ग्राहक बन जाते हैं।

हमारे अनुभव में ऐसे अनेकों प्रसग आये हैं जब हमें दो विरोधियो मे समझौता कराना पडा है। दो शत्रुओं को मित्र बनाना पडा है। दोनों मे विरोध किस प्रकार आरम्भ हुआ इसका गभीर अनुसधान करने पर पता चला कि वास्तविक कारण बहुत ही स्वल्प था, पीछे दोनो पक्ष अपनी अपनी कल्पनाएं बढाते गये और बात का बतगड बन गया। यदि एक दूसरे को समझने का कोशिश करे दोनो अपने अपने भाव एक दूसरे पर प्रकट करदें और एक दूसरे की इच्छा, स्वभाव, मनोभूमि का उदारता से अध्ययन करें तो जितने आपसी तनाव और झगडे दिखाई पडते हैं उनका निन्यानवें प्रतिशत भाग कम होजाय और सौ भाग में से एक भाग ही रह जावे। क्लेश कलह के वास्तविक कारण इतने कम है कि उनका स्थान आटे में नमक के बराबर स्वाद परिवर्तन जितना ही रह जाता है। मिर्च बहुत कडुई है और उसका खाना सहन नहीं होता पर स्वल्प मात्रा तो रुचि कर होती है।

नीच योनियो से उठकर मनुष्य जाति मे आये हुए, मनुष्य जाति रूपी माता के गर्भ से नवीन प्रसव हुए बालक बहुत ही अपूर्ण होते हैं इस से मनुष्य समाज के अनुरूप सारी योग्यताएं आरभ मे नहीं होतीं। यह बालक दिन मे भी सो जाते हैं

रात को जगते भी रहते हैं. कपडों पर मल मूत्र भी फिर देते हैं, भूख लगने जैसी साधारण आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऐसे रोते चिल्लाते हैं कि घर गूंज उठता है। इनका उत्पात अवश्य बना रहता है। जिस माता का प्रजनन क्रम निरन्तर तीव्र गति से जारी रहता है उनका घर इन उत्पातों से भी भरा ही रहेगा। परन्तु क्या कोई पिता, माता, भाई, बहिन, इन नव जात शिशुओं के उत्पातों से घबरा कर घर छोड देता है? या इन बढोतरी से डरकर घरको रहने से अयोग्य घोषित कर देता है? सच तो यह कि यह उत्पात भी उदार हृदय वालों के लिए एक अच्छा खासा मनोरंजन और दिन रात्रि का सहारा होता है। यदि उत्पाती बालकों की वृद्धि न होती तो माता पिता को जो गौरव यश धर्म और वृद्धावस्था में सुख मिलता है वह कैसे मिल सकता था?

हर उन्नत आत्मा का कर्तव्य है कि वह आत्म विकास के लिए दूसरों की उन्नति का भी प्रयत्न करे। गिरे हुओं को बढने के लिए प्रोत्साहित करे। समाज में तमोगुण उबलते देखे उनसे डरने या घबराने की जरूरत नहीं है आत्मोन्नति चाहने वाली आत्मा का कर्तव्य है कि उन उत्पातों में सुधार करने तथा अपनी भुजाएं मजबूत बनावे। दुष्टता को बढने न देना, पाशविक तत्वों को मनुष्य तत्व से न घुलने देने का प्रयत्न करें, बहुत आवश्यक है। चतुर हलवाई दूध को मक्खियों से बचाता रहता है ताकि दूध अशुद्ध न होजाय। इसी कौशल को जानना है कि समाज में पाप वृत्तियों को बढने से रोका चाहिए। इस विरोध कार्य में बडी होशियारी की जरूरत है यही तलवार की धार है इस पर चलना सचमुच योग कहा जायगा।

बुराइयों से भरे हुए इस विश्व में आपका कार्य क्या होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर भगवान सूर्य नारायण हमें देते हैं वे प्रकाश फलाते हैं अँधेरा अपने आप भाग जाता है, बादल मेह बरसाते हैं ग्रीष्म का ताप अपने आप ठडा हो जाता है, हम भोजन खात हैं भूख अपने आप बुझ जाती है, स्वास्थ्य के नियमा की साधना करते हैं दुबलता अपने आप दूर हो जाती है, ज्ञान प्राप्त करते हैं । अज्ञान अपने आप दूर हो जाता है। सीधा रास्ता यह है कि ससार में से बुराइयों को हटाने के लिए अच्छाइयों का प्रसार करना चाहिए। अधर्म को मिटाने के लिए धर्म का प्रचार करना चाहिए । रोग निवारण का सच्चा उपाय यह है कि जनता के मन में स्वास्थ्य के नियमा की महत्ता धँसाई जाय । बीमार होने पर दवा देना ठीक है पर समाज का निरोग करने में बेचारे अस्पताल असमर्थ हैं। दड नीति का भी एक स्थान है पर वह अस्पताल की जरूरत पूरी करता है तात्कालिक आवश्यकता का उपचार करती है, मूल कारणों का निवारण दड नीति द्वारा नहीं हो सकता । विरोध, आपरेशन के समान एक तात्कालिक कार्य है एक मात्र आपरेशन करना ही जिस डाक्टर का काम हो वह कसाई कहलावेगा । उस डाक्टर की महिमा है जो घाव को भर देता है। ऐसा डाक्टर किस काम का जो पीव निकालने के लिए फोड़े तो चीरे पर ऐसी बुरी तरह चीरे कि घाव बहुत बढ जाय और चिकित्सा की मूर्खता में आपरेशन का घाव बढते बढते गहरा पहुँच कर हड्डी को सडादे और रोगी के लिए प्राण घातक बन जाय ।

आप सरल मार्ग को अपनाइए लडने, बड घडाने और कुढने की नीत छोड़कर दान, सुधार, स्नेह के मार्ग का

अवलम्बन कीजिए। एक आचार्य का कहना है कि "प्रेम भरी बात, कठोर लात से बढ़कर है।" हर एक मनुष्य अपने अन्दर कम या अधिक अन्शो में सात्विकता को धारण किये रहता है, आप उसकी सात्विकता को स्पर्श करिये और उसकी चेतना में जागरण उत्पन्न कीजिए। जिस व्यक्ति में जितने सात्विक अंश हैं उन्हें समझिये और उसी अनुसार उन्हे बढ़ाने का प्रयत्न कीजिये। अँधेरे में मत लड़िये वरन प्रकाश फैलाइये, अधर्म बढता हुआ दीखता हो तो निराश मत हूजिये वरन् धर्म प्रचार का प्रयत्न कीजिये। बुराई के मिटाने का यही एक तरीका है कि अच्छाई को बढ़ाया जाय। आप चाहते हैं कि इस बोतल में से हवा निकल जाय, तो उसमें पानी भर दीजिये। बोतल में से हवा को तो निकालना चाहे पर उसके स्थान पर कुछ भरें नहीं तो आपका प्रयत्न बेकार जायगा। एक बार हवा को निकाल देंगे दूसरी बार फिर भर जायगी। गाड़ी जिस स्थान पर खड़ी हुई है वहां खड़ी रखना पसंद नहीं करते तो उसे खींच कर आगे बढ़ा दीजिये आप की इच्छा पूरी हो जायगी। आप गाडी को तो हटाना चाहे पर उसे आगे बढ़ाना पसंद न करें, इतना मात्र करके संतोष करलें कि कुछ क्षण के लिए पहियों को ऊपर उठा दिया करें तो इससे काम न चलेगा जितनी देर पहियों को ऊपर उठाये रहेंगे उतनी देर तो स्थान खाली रहेगा पर जैसे ही उसे छोड़ेंगे वैसे ही वह जगह फिर घिर जावेगी। संसार में जो दोष आपको दिखाई पड़ते हैं, उनको मिटाना चाहते हैं तो उनके विरोधी गुणों को फैला दीजिये। आप गंदगी बटोरने का काम क्यों पसंद करें? उसे दूसरों के लिए छोड़िए आप तो इत्र छिड़कने के काम को ग्रहण कीजिये। समाज में मरे हुए

पशुओं का चमडे उधडने वाले की भी जरूरत है पर आप तो प्रोफेसर बनना पसद कीजिये । ऐसी चिन्ता न कीजिये कि मैं चपडा न उधेडूँगा तो कौन उधेडेगा ? विश्वास रखिये, प्रकृति के साम्राज्य में उस तरह के भी अनेक प्राणी मौजूद हैं। अपराधियों को दड देने वाले स्वभावत आवश्यकता से अधिक है। बालक किसी को छेडेगा तो उसके गाल पर चपत रखने वाले साथी मौजूद है । पर ऐसे साथी कहा मिलेंगे जो उसे मुफ्त में दूध पिलावें और कपडे पहनावें । आप चपत रखने का काम दूसरों को करने दीजिए। लात का जवाब घूँसो से देने में प्रकृति बडी चतुर है । आप तो उस माता का पवित्र आसन ग्रहण कीजिए जो बालक को अपनी छाती का रस निकाल कर पिलाती है और खुद ठड में सकुड कर बच्चे को शीत से बचाती है। आपको जो उच्च दार्शनिक ज्ञान प्राप्त हुआ है इसे विद्वान् प्रोफेसर की भाति पाठशाला के छोटे-छोटे छात्रों में बाट दीजिये।

हो सकता है कि लोग आपको दुख दें, आपका तिरस्कार करें, आपके महत्व को न समझें, आपको मूर्ख गिनें और विरोधी बन कर मार्ग में अकारण कठनाइयां उपस्थित करें पर इसकी तनिक भी चिन्ता मत कीजिये और जरा भी विचलित मत हूजिये । क्योंकि इनकी सख्या बिलकुल नगण्य होगी। सौ आदमी आपके सत्प्रयत्न का लाभ उठावेंगे तो दो चार विरोधी भी होगे । यह विरोध आपके लिये ईश्वरीय प्रसाद की तरह होगा ताकि आत्म निरीक्षण का, भूल सुधार का, अवसर मिले और सघर्ष से जो शक्ति आती है उसे प्राप्त करते हुए तेजी से आगे बढ़ते रहें।

आप समझ गये होंगे कि संसार असार है, इसलिए वैराग्य के योग्य है, पर आत्मोन्नति के लिए कर्तव्य धर्म पालन करने में यह वैराग्य बाधक नहीं होता। सच तो यह है कि वैराग्य को अपनाकर ही हम विकाश के पथ पर तीव्र गति से बढ़ सकते हैं। संसार को दुख मय मानना एक भारी भूल है। यह सुखमय है। यदि संसार में सुख न होता तो स्वतन्त्र शुद्ध, बुद्ध, और आनन्दी आत्मा इसमें आने के लिए कदापि तैयार न होता। दुख और कुछ नहीं, सुख के अभाव का नाम दुख है। राज मार्ग पर चलना छोड़ कर कटीली झाड़ियों में भटकना दुख है। दुख, विरोध, वैर, क्लेश, कलह का अधिकांश भाग काल्पनिक होता है, दूसरे लोग सचमुच उतने बुरे नहीं होते, जितने कि हम समझते हैं। यदि हम अपने मस्तिष्क को शुद्ध कर डालें, आँखों पर से रंगीन चश्मा उतार फेंके, तो संसार का सच्चा स्वरूप दिखाई देने लगेगा। यह दर्पण के समान है भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा। जैसे ही हमारी दृष्टि भलाई देखने और स्नेह पूर्ण सुधार करने को हो जाती है वैसे ही सारा संसार अपना प्रेम हमारे ऊपर उड़ेल देता है, अन्तरिक्ष लोकों से शुद्ध आत्माओं का अविरल प्रेम रस फुहारे की तरह झरने लगता है। जैसे ठंडा चश्मा लगा लेने पर जेठ की जलती दुपहरी शीतल हो जाती है वैसे ही सुख की भावना करते ही विश्व का एक एक कण अपनी सुख शान्ति का भाग हमारे ऊपर छोड़ता चला जाता है। गुबरीले कीड़े के लिए विष्ठा के और हंस के लिए मोतियों के खजाने इस संसार में भली प्रकार भरे हुए हैं। आपके लिए वही वस्तुएं तैयार हैं जिन्हें चाहते हैं। संसार को दुख मय, पापी, स्वार्थी मानते हैं तो वह 'मनना भूत' की तरह उसी रूप में

सामने आता है। जब सुख मय मान लेते हैं तो मस्त फकीर की तरह रूखी रोटी खाकर बादशाही आनन्द लूटते हैं। सच मुच दुख और पाप का कुछ अश दुनियां में है पर वह दुख सहन करने योग्य है, सुख की महत्ता बढ़ाने वाला है, जो पाप है वह आत्मोन्नति का प्रधान साधन है। यदि परीक्षा की व्यवस्था न होतो विद्वान और मूर्ख में कुछ अन्तर ही न रहे।

पाठकों को उपरोक्त पंक्तियों से यह जानने में सहायता हुई होगी कि सृष्टि जड होने के कारण हमारे लिए दुख सुख का कारण नहीं कही जा सकती। यह दर्पण में समान है जिसमें हर व्यक्ति अपना कुरूप या सुन्दर मुख जैसे का तैसा देख सकता है। "ससार कल्पित है" दर्शन शास्त्र की इस उक्ति के अन्तर्गत यही मर्म छिपा हुआ है कि हर व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार ससार को समझता है। कई अंधों ने एक हाथी को छुआ। जिसने पूँछ छुई थी वह हाथी को साप सा बताने लगा, पैर पकडा उसे खंभे सा जँचा, जिसने पेट पकडा उसे पर्वत क समान प्रतीत हुआ। ससार भी ऐसा ही है इसका रूप अपने निकटवर्ती स्थान को देखकर निर्धारित किया जाता है। आप अपने आस पास पवित्रता, प्रेम, भ्रातृभाव, उदारता, स्नेह, दया, गुण दर्शन, का वातावरण तैयार करलें अपनी दृष्टि को गुण ग्राही बनालें तो हम शपथ पूर्वक कह सकते हैं कि आपको यही ससार नदन वन की तरह, स्वर्ग के उच्च सोपान की तरह, आनन्द दायक बन जायगा। भले ही पडौसी लोग अपनी बुरी और दुखदायी कल्पना के अनुसार इसे बुरा और कष्ट प्रद समझते रहें।

---

# वैराग्य की मीमांसा।

गंभीर दृष्टि से अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह अज्ञेय, जड, नश्वर, अस्थिर, संसार बड़ा ही जटिल, समझ में न आने वाला, हृदय हीन, प्रेम न करने योग्य, अनुपयोगी एवं डावांडोल है। जिसके आदि अंत का कुछ पता ही नहीं चलता, ऐसा अज्ञेय, जो चैतन्यता रहित होने के कारण किसी के प्रेम द्वेष की परवा ही नहीं करता, ऐसा जड, जिस का स्वरूप पल पल में बदलता है, ऐसा नश्वर, हम जिसका पूरी तरह अनुभव नहीं कर पाते ऐसा इन्द्रियातीत, और जो कभी स्थूल स्थूल कभी सूक्ष्म, कभी दृश्य कभी अदृश्य होता रहता है ऐसा मायावी, संसार असार है। इससे लिप्त होना व्यर्थ है। जो वस्तु ऐसी डावांडोल और बेढगी है उससे तो वैराग्य ही रखना उचित है। इस वैराग्य का सभी शास्त्रों में समर्थन किया गया है। किसी किसी दर्शन में तो इसे स्वप्नवत मिथ्या बताकर उसकी तिरस्कार पूर्ण उपेक्षा की गई है। आध्यात्म शास्त्रो में बार बार इस मन्तव्य को दुहराया गया है कि संसार को मिथ्या समझना चाहिए और इससे प्रेम न करना चाहिए। यह आदेश बहुत ही महत्व पूर्ण और उपयोगी है क्योंकि उड़ते हुए बादलों से नाता जोड़ना अपने लिए वियोग का दुख स्रोत बुलाना है। निस्सन्देह संसार से वैराग्य होना एक बहुत ही उत्तम ज्ञान है इस ज्ञान का महत्व बढ़ाने के लिए सत्य और वास्तविक जगत को, मिथ्या अथवा भ्रम कह दिया जाय तो भी कोई बड़ा अपराध न होगा।

यहा अक्सर एक भ्रम उत्पन्न होजाता है। वह यह कि पच तत्वा के परिवर्तन शील दृश्य रूपो से–जड पदार्थों से, वैराग्य करने का अर्थ लोग "जीवन से वैराग्य" करना समझ लेते हैं और आत्मघाती कार्य करने के लिए उतारू हो जाते है। जगत मिथ्या ह इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि जीवन भी मिथ्या है, जीव भी मिथ्या है या आत्मा भी मिथ्या है। नीम कडुआ है इसका भाव यह नहीं है कि आम भी कडुआ है। मिर्च चरपरी है इसलिए मिठाई भी चरपरी है यह मान लेना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। 'जीवन विचार' पुस्तक मे यह विचार पूर्वक बताया जा चुका है कि परमात्माकी प्रेरणा से जीवन आरम्भ हुआहै और वह निरन्तर विकाश क्रम पर अग्रसर हो रहा है, लघु से महान बन रहा है अपना दायरा बढ़ाता हुआ अणु से विभु होने जा रहा है। विकाश का अर्थ है छोटे से बडा होना। बीज जब विकाश करता है तो नन्हे दाने से बढकर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। आत्मा जैसे जैसे परमात्मा के निकट पहुँचता जाता है अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहकार को विस्तृत करता जाता है। मनुष्य की उन्नति का अर्थ है—उसके अहभाव का प्रसार होना, स्वार्थ दृष्टि से बढकर परमार्थ दृष्टि का होना। आरम्भ में जीव बिलकुल आत्मगत होता है उसका स्वार्थ केवल अपने शरीर तक ही होता है। नीच योनियो के जीवो को सामूहिक रूप से भोजन दिया जाय तो वे अपने सगे पुत्र को धकेल कर स्वय उसे खाजायगे, उन्हे केवल अपनी ही परवा होती है, अण्डा देने के बाद वे भूल जाते हैं कि उनमें से बच्चे हुए या नहीं, वे जिन्दे हैं या मर गये। मक्खी मच्छडो को किसी ने सन्तान का लालन पालन करते नहीं देखा। किन्तु जैसे जैसे

उनका विकाश होता है वे अहंभाव का प्रसार करते जाते हैं। क्रमशः बच्चों का, पति पत्नी का, जाति वालों का, ध्यान बढ़ता जाता है, इसका अर्थ है "अपने पन" की सीमा का बढ़ना। मनुष्य योनि तक आते आते जीव भले प्रकार सामाजिक प्राणी बन जाता है, उसे अपनी अपेक्षा दूसरों का अधिक ध्यान रखना पड़ता है। कुटुम्ब के अग्रिणी पुरुष स्वयं कष्ट सहते हैं किन्तु परिवार के अन्य लोगों की आवश्यकताओं का पूरा पूरा ध्यान रखते हैं। माता स्वयं शीत में सकुड़ कर बच्चों को ठंड से बचाती है, पिता स्वयं अभाव सहता हुआ बालकों को सुविधा पहुँचाता है। मानो केवल अपना शरीर ही नहीं वरन परिवार वालों का शरीर भी अपना ही शरीर है। जैसे अपनी उंगली में दर्द होने से शारीरिक कष्ट होता है वैसी ही मानसिक वेदना माता को बालक की उंगली में दर्द होने पर होती है। यह आत्मीयता महान आत्माओं में बढ़ती ही जाती है और अन्त में 'वसुधैव कुटुम्बकम' उनका ध्येय बन जाता है। परमात्मा सब प्राणियों के अन्दर समाया हुआ है और सबको समान दृष्टि से देखता है. आत्मा भी जब उच्च आसन पर पहुंचती है तो अपनेपन की चहार दिवारी को अत्यन्त विशाल करीब करीब परमात्मा की ही बराबर कर देती है। सभी जीव कुटुम्बियों के समान प्रतीत होते हैं वरन आगे चलकर बिलकुल आत्मवत होजाते हैं।

जगत से वैराग्य करने का भाव यदि जीवन का विकाश क्रम रोक देना समझा जाय तो बड़ा अनर्थ हो जायगा और दर्शन शास्त्र का मूल मन्तव्य ही चौपट हो जायगा। "संसार मिथ्या है" यह सोच कर कोई व्यक्ति यदि आलसी हो जाय और स्वार्थ की परिभाषा फिर सकुचित करके विनाश

के पथ पर उलटा लौट पड़े तो अब तक की सारी मंजिल बेकार चली जायगी और उसका ध्येय लघु से महान् बनना न रहेगा वरन् महान से लघु बनना हो जायगा। हो सकता है कि ऐसी स्वार्थ-सकीर्णता मक्खी मच्छड़ो की योनियो की ओर पुन उलटी लौट पड़े और अबतक के इतने परिश्रम को मिट्टी में मिला दे। इन्हीं बातों का ध्यान रखते हुए आचार्यों ने आध्यात्म शास्त्र को तलवार की धार बताया है और अधिकारी पात्रों को ही ब्रह्मविद्या का उपदेश देने का आदेश किया है। कोई अनधिकारी व्यक्ति यदि उलटा अर्थ लगाले और कुछ का कुछ करने लगे तो भरी हुई बन्दूक से खेलने वाले बालक की तरह भीषण परिणाम उपस्थित कर सकता है।

वैराग्य का विषय ऐसा ही एक गोता खोरी का खेल है जिसके फल स्वरूप समुद्र की तह में से कीमती मोती प्राप्त होते हैं किन्तु अनाडी पनडुब्बों के लिए खतरा भी बहुत है। पच तत्वों से बने हुए पदार्थों से वैराग्य करने का तात्पर्य यह है कि ससार की वस्तुओं को अपनी नहीं समझना चाहिए उन पर मालिकी नहीं जतानी चाहिए। आपके पास जो धन, धान्य, जमीन, जायदाद, यश, कीर्ति, विद्या, बुद्धि, स्त्री, पुत्र, स्वास्थ्य सौन्दर्य है इन्हें अपने काम में आने वाली वस्तु समझिए। इन्हें अपना उद्देश्य नहीं वरन् औजार मानिए। रुपया आपके पास है वह इसलिए नहीं है कि आप उस चाँदी के अधिपति होगये, चाँदी के वे कण सृष्टि के आदि से मौजूद थे और अत तक रहेंगे उनके लम्बे जीवन की तुलना में आपके शरीर की आयु इतनी है जितना हमारा एक पलक मारना। आप उस चाँदी के मालिक किसी प्रकार नहीं हो सकते। इसी प्रकार जमीन के आप अधिपति किस प्रकार हुए?

जिस जमीन को आप अपनी कह रहे हैं आश्चर्य नहीं उसी जगह आप जैसे हजारों मालिकों की हड्डियाँ दबी हुई हों। वैभव की साज सामिग्री तो बहुत ही स्वल्प जीवी है। थाली भरा भोजन इस समय आपकी मालिकी में है पर पेट में चले जाने के दो रोज बाद उसे मांगा जाय तो उसका कुछ भी पता न मिलेगा। कपड़ा चार महीने में फट जायगा। शरीर पचास वर्ष में टूट जायगा। फिर आपकी मालिकी कहाँ जायगी ?

'वैराग्य करो' शास्त्र के इस उपदेश का मर्म है कि 'मालिकी छोड़ो' क्योंकि मालिकी में अज्ञान, पाप और दुख भरा हुआ है। जब आप किसी भूमि खंड के स्वामी बनते हैं तब आप अपना यह अज्ञान प्रकट करते हैं कि संसार के वास्तविक स्वरूप से आप बिलकुल अनजान हैं। जैसे एक हिरन नदी में पानी पीने के बाद यह कहे कि मैं नदी का मालिक हूँ तो हम लोग उसकी बुद्धि पर हँसेंगे, इसी प्रकार वृक्ष के पल्लवों में रहने वाला पक्षी यदि वृक्ष का मालिक बने तो उसका यह दयनीय अज्ञान होगा। संसार का कार्य अपनी मर्यादा से चल रहा है, इसी प्रवाह में तत्कालीन परिस्थितियों से जीवधारी भी लाभ उठालेते हैं सूर्य की धूप में बैठकर सूर्य को अपनी सम्पत्ति मान लेना कोई बुद्धिमानी नहीं है। इस मूर्खता का फल निश्चय पूर्वक पाप होता है। मालिकी के साथ साथ उसका सारा उपयोग अपने लिए करने का भाव उत्पन्न होता है। रुपया केवल मेरे ही काम आवे, यह सोच कर कंजूस आदमी उसे गढे में दबा दबा कर रखता है। भोजन को मैं ही खाऊँ, यह सोच कर पेटू आदमी बीमार पड़ता है, विद्या मेरे ही काम आवे यह सोच कर घमंडी

अपने ज्ञान को भूल जाता है। मालिकी से जो घमंड आता है उसके नशे में मनुष्य अन्धा हो जाता है और अन्धे को कर्म अकर्म कुछ नहीं सूझता इस लिए पाप पुण्य में उसे अन्तर दिखाई नहीं देता। अज्ञानी व्यक्ति को जब धन, सम्पति, विद्या, बडाई मिलती है तो वह बौखला उठाता है और नशे में चूर होकर अधर्म, अन्याय, अत्याचार करने पर उतारू हो जाता है। मालिकी के साथ ममता भी उत्पन्न होती है, यह ममता अन्त में दुखदायी होती है। क्योंकि नश्वर पदार्थों को एक दिन नष्ट होना ही है, अपनी वस्तु का नष्ट होना ही दुख है। अपना पुत्र मर जाने से दुख होता है दूसरों के पुत्र तो रोज मरते ही रहते हैं। अपना धन नष्ट हो जाने से पीड़ा होती है, दूसरों का धन तो दुनियां में नित्य नष्ट होता है, अपना मकान फूट जाना कष्ट दायक है, दूसरे के मकान तो नित्य फूटते ही रहते हैं, अपनी दुकान में आग लग जाय तो बड़ा क्लेश होगा किन्तु यदि उसी दुकान को एक दिन पहले किसी को बेच दिया होता और तब आज आग लगती तो कुछ क्लेश न होता। दुकान वही थी, पर उसमें से, बिक-जाने के कारण मालिकी की भावना उठजाने से, कष्ट की अनुभूति भी उठ जाती है। निदान यह जानना चाहिये कि मालिकी ही दुख की जननी है।

अज्ञान, पाप और दुख से बचने के लिए पच भौतिक पदार्थों मे वैराग्य करना चाहिए अर्थात् उनकी मालिकी छोड देनी चाहिए और उन्हें आत्मोन्नति के लिए मिला हुआ साधन समझ कर सदुपयोग करना चाहिए। यहा यह ध्यान रखना है कि ऐसा वैराग्य, भावना में ही होगा अर्थात् उन पदार्थों के साथ हमारा क्या संबंध है यह बात ठीक प्रकार समझ में

आजावेगी। इस समझ के कारण निष्कामता, निर्लिप्तता और निष्पापता आवेगी, तदनुसार यह जानना सुलभ होगा कि किस वस्तु का क्या उपयोग किया जाय। खजानची मालिक के रुपयों का उपयोग उन्हीं कार्यों में करता है जिसके लिए मालिक की इजाजत है। किन्तु अपने निजी रुपयों को मनमाने तरीके से खर्च कर लेता है। संसार की वस्तुओं में मालिकी के विचार रखने से उनका दुरुपयोग होता है और संसार के समस्त पदार्थों को ईश्वर की वस्तु समझ कर उनका खजानची रहते हुए कार्य करने में सामग्री का उपयोग धर्म, न्याय और सुख के कार्यों में होता है। सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य करना, उनका ठीक प्रकार उपयोग करने का कला सीखना है। लेकिन आज तो कर्तव्य त्यागी को वैरागी कहने की प्रथा उठ खड़ी हुई है। गृह प्रबंध में भाग न लूंगा, स्त्री पुत्रों को बिलखता छोड़कर इधर उधर मटर गश्ती करता फिरूंगा, अपने पैसों को लुटा दूंगा, किसी का कुछ काम न करूंगा, पेट पालन के लिए भी परिश्रम न करूंगा, अभावों से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुखा डालूंगा, ऐसी मान्यता रखने वाले वैरागी सचमुच वैरागी नहीं हैं। यह आलसी, प्रमादी और वैराग्य के असली अर्थ से सर्वथा अपरिचित पर्म त्यागी भिखमंगे, आध्यात्मिकता के नाम पर एक प्रकार की आत्म हत्या करते हैं।

वैराग्य का सारा रहस्य निष्काम कर्मयोग में दिया हुआ है। मानव जाति के सबसे महान दर्शन शास्त्र गीता ने निष्काम कर्म योग पर ही सबसे अधिक बल दिया है। संसार में हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें गीताकार का भावार्थ भली प्रकार समझने की चेष्टा

करनी चाहिए । निष्काम और कर्म योग यह दो शब्द हैं। निष्काम से तात्पर्य अलग रहने, न गिलजाने, निर्लिप्त रहने से है। कर्म योग का तात्पर्य कर्तव्य धर्म पालन करने से है। जीव का धर्म यह है कि वह विकाश के निमित्त अहंभाव का प्रसार करे। अपनी आत्मीयता को दूसरो तक बढावे, अपने स्वार्थों को दूसरों के स्वार्थ से जोडने के दायरे को बढाता जाय । यह आध्यात्मिक उन्नति यदि वास्तविक हो तो वह आदमी अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक भाग दूसरों की सेवा में लगाता है और कम से कम भाग अपने लिए रखता है। अर्थात् वह सेवा धर्म अपना लेता है और परोपकार में रत रहता है। उसका दृष्टिकोण सकुचित स्वार्थ पूरा करने का नहीं होता वरन् उदारता सहित परमार्थ को लिए हुए होता है। जो जितना ही परमार्थ चिन्तक है वह उतना ही बडा महात्मा कहा जायगा।

हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों को ठीक तौर से पहचानने में लोग बड़ी भूल करते हैं। उनकी दृष्टि इतनी ही पहुँचती है कि ऋषि मुनि नगरों से दूर जगलों में रहते थे और फलफूल खाकर तथा वल्कल वसन पहनकर जीवन यापन जरते थे। आजकल के साधु नामधारी तथाकथित वैरागी अपना वैराय उसी की नकल का बनाते हैं । जीवन की आवश्यकताऐं तो घटाते हैं पर बची हुई शक्ति को परमार्थ में नहीं लगाते, वरन् दंभ, आलस्य, प्रमाद और धूर्तता पर उतर आते हैं इसलिए उनका जीवन साधारण ग्रहस्थ से भी नीचे दर्जे का बन जाता है। यही कारण है कि साधु वेशधारी भिखमगों को गली कूचों में हम कुत्तों की तरह दुरदुराता हुआ देखते हैं। ऋषि मुनियों के जीवन पर गभीरता पूर्वक दृष्टिपात किया जाय

तो उनकी सच्ची आत्मोन्नति के प्रमाण प्रत्यक्ष होजाते हैं। जंगलों में जाकर, रूखा सूखा खाकर, नंगे उघाड़े अजगरों की तरह वे नहीं पड़े रहते थे वरन वहां जाकर जन साधारण की सेवा के लिए अधिक से अधिक काम करते थे। योगी द्रोणाचार्य ने शस्त्र विद्या मे स्वयं पूर्णता प्राप्त की और अनेकों अधिकारियों को उस विद्या में पारंगत बनाया. योगी चरक ने चिकित्सा शास्त्र की अन्यतम शोध की, योगी सुश्रुत ने शल्य क्रिया ( सर्जरी ) का आविष्कार किया. पाणिनी ने व्याकरण शास्त्र निर्माण किया, आर्य भट्ट ने खगोल विद्या के मर्मों की खोज करके ज्योतिष शास्त्र बनाया, योगी वशिष्ठ ने अपने उपदेशों से राम जैसे राजकुमार को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम बना दिया योगी परशुराम ने अपने प्रचंड बाहुबल से पृथ्वी को अत्याचारियों के रक्त से रंग दिया, योगी नारद का प्रचार कार्य इतना प्रबल था कि वे एक घड़ी से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहरते थे और इस युग में जो कार्य अनेक अखबार और पब्लिकसिटी आफीसर मिलकर नहीं कर पाते उस समय उतना काम अकेले नारद कर लेते थे। योगी विश्वामित्र ने अलग ही सृष्टि रचदी, योगी व्यास ने अष्टादश महापुराण रचे जिनमें गीता जैसे अनेक रत्न छिपे पड़े हैं। योगिराज कृष्ण ने महाभारत जैसे संग्राम को कराया। योगी चाणक्य के अर्थ शास्त्र और कूट नीति शास्त्र के अपूर्व विधान की रचना की। एक भी योगी का जीवन ऐसा नहीं पाया जा सकता जिससे लोक सेवा के महान कार्य समन्वित न हों। आत्म शक्ति की उन्नति के लिए वे योगाभ्यास भी करते थे पर वह ठीक इसी प्रकार था जैसे प्रातःकाल अधिक काम करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए हम रात को निद्रा लेते हैं, या सुस्ती

लड़ने का बल बढ़ाने के लिए दूध पीते हैं। रहन सहन को कम खर्चीला वे इसलिए बनाते थे कि अपने निजी झंझटों को पूरा करने के लिए कम परिश्रम करना पड़े और अपनी अधिकांश शक्ति का उपयोग लोक सेवा के निमित्त होसके। यह मानना भी गलत है कि हमारे ऋषि महात्मा स्त्री पुत्रों को त्याग देते थे। सच तो यह है कि शायद ही कोई ऐसा ऋषि रहा हो जिसने अविवाहित जीवन बिताया हो। अन्यथा पुराण साक्षी हैं कि सभी ऋषियों के स्त्रियाँ और संतानें मौजूद थीं। शंकर जैसे योगेश्वर के दो विवाह हुए और उनके बाल बच्चे भी मौजूद थे।

महर्षियो के जीवन पर थोड़ा सा प्रकाश इसलिए डाला गया है कि नकलची लोग पूरी बात को समझें और तब उसका अनुकरण करें। बाल बच्चों को भटकता छोड कायरता के साथ कर्तव्य धर्म की अवहेलना करते हुए घर त्याग कर भाग जाना और भगवान का भजन करने की झूठी आत्म वंचना के बहाने भीख टूक खाकर अकर्मण्यता पूर्वक जीना न तो योग है, न सन्यास, न स्वार्थ है, न परमार्थ यह एक प्रकार की आत्म हत्या है जिसे अल्प शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति, स्वार्थी 'कनफूका' गुरुओं के बहकावे मे आकर स्वीकार कर लेते हैं और अपने बहुमूल्य जीवन की आलस्य और प्रमाद की छुरियों से निर्दयता पूर्वक हत्या कर डालते हैं। वैसे तो आज भी थोड़े बहुत सच्चे महात्मा इन साधु वेश धारियो के बीच मिल सकते हैं जो स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को महत्व देते हैं और अहंकार के नशे में ऐंठे फिरने की बजाय नम्रता और सेवा का परिचय देते हैं, ऐसे महापुरुष उसी प्रकार पूजनीय हैं जैसे कपिल कणाद। हमारा विरोध तो उन भिख-

मंगों मे है जो वैराग्य के पवित्र नाम को कलंकित करके प्रमाद की उपासना करते हैं और जन साधारण के मन में यह झूठी धारणा पैदा करते हैं कि वैरागी वही है जो घर बार छोड कर निरुद्देश्य मारा मारा फिरे और भजन की आत्म वंचना करता हुआ स्वार्थी जीवन बितावे। ज्ञान भक्ति और कर्म यह तीन आत्मोन्नति के साधन हैं पर हायरे अज्ञान! तूने तो सब कुछ ही उलट दिया। ईश्वर के बारे में कहा जाता है कि उसने अपनी खुशामद कराने के लिए—भजन कराने के लिए—हम गुलामों को पैदा किया है। क्या कोई समझदार पिता ऐसा देखा है जो अपने पुत्र से यह कहे कि सब छोड और मेरा नाम रटाकर या मेरे आगे हाथ बाधे खडा रह।

निस्संदेह भजन आवश्यक है निश्चय ही योगाभ्यास जीवन बहुत बड़ी आवश्यकता है पर दोनों ही आत्मोन्नति के लिए हैं। जीव का असली धर्म "विकाश" है? भजन उसका एक साधन है। ईश्वर द्वारा निर्मित जगत का एक एक कण अपने धर्म का पालन कर रहा है, धर्म के कठोर सूत्र में उसका जर्रा जर्रा बंधा हुआ है। यदि भजन ही ध्येय होता तो प्रकृतितः हम लोग बहुमुखी उन्नति का प्रयत्न न करते वरन भजन भक्ति में वैसे ही प्रवृत्त हो जाते जैसे बालक पैदा होने पर रोकर हाथ पांव फेंक कर शरीर को बढ़ाने में लग जाता है। जीवन के विकाश क्रम को रोक कर, भजन करने के लिए कर्तव्य कर्म का त्याग देना, किसी प्रकार वैराग्य नहीं है।

जीवन विकाश के लिए आत्मभाव का प्रसार आवश्यक है। परमार्थ में स्वार्थ को खोते जाना, अपने लिए कम दूसरे के लिये ज्यादा की इस वृत्ति को अपनाते जाना। बस एक मात्र यही जीव का धर्म है। धर्म के बारे [illegible] परिभाष,

के अन्तर्गत आजाते हैं। त्याग, सहानुभूति, प्रेम, दया, उदारता आदि सत् वृत्तिया विकाश धर्म की किरणे हैं। सम्पूर्ण धर्म शास्त्र इसी एक विन्दु के आस पास उसी प्रकार घूम रहे हैं जसे ध्रुव के चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं। आप संसार स विरक्त रहिए पर प्राणियों को आत्म तुल्य समझ कर उनकी अधिकाधिक सेवा के मार्ग पर बढते चलिये। स्त्री के पुत्र के कुटुम्बियो के शरीरो को नाशवान समझिए पर उनके जीव की उन्नति में भरपूर सहायता कीजिए। उनकी आवश्यक सुविधाओं का उसी प्रकार ध्यान रखिये जैसे अपनी सुविधा का रखत हैं। इस आत्म प्रसार के दायरे को क्रमशः बढ़ाते चलिए जिन सुखों को प्राप्त करने का इच्छा अपने लिए करते हैं उन्हीं की दूसरों के लिए इच्छा करिए। सहृदय माता घर में बने हुए खीर खाड के भोजन पहले अपने बालकों को कराती है तब बचा खुचा आप खाती है। आप जब विकाश धर्म का पालन करेंगे तो ऐसी ही उदार एव सहृदय माता बन जावेंगे। विश्व के अन्य प्राणी आपके बालक होंगे। आपका सारा वभव अल्प बुद्धि वाले, अल्प साधन वाले, अल्प शक्ति वाले, अल्प वैभव वाले, प्राणियो के काम आवेगा तब कहीं बचा खुचा भौतिक सुख आप अपने लिए चाहेंगे। खीर खाड खाकर प्रसन्न हुए बच्चों का प्रफुल्ल मुख देखकर माता का हृदय आनन्द से भर जाता है अशक्त प्राणियों की सेवा में अपना वैभव उत्सर्ग कर देने के पश्चात् आपके अन्त करण में आनन्द की लहरें उठने लगेंगी।

नश्वर ससार का उपदेश है कि वैरागी बनिए। वैरागी का अर्थ है ससार के पदार्थों की नश्वरता को समझते हुए उनका उपयोग विकाश धर्म की पूर्ति के लिए परमार्थ में कराना।